श्री यागमण्डल विधान

गुजराती व हिन्दी भावार्थ सहित

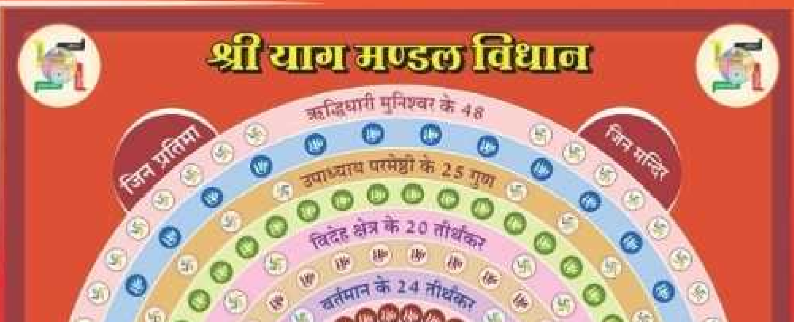

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 | फोन - 02846-244334

प्रकाशन अवसर

શ્રી દિગંબર જિનબિંબ પંચકલ્યાણક પ્રતિષ્ઠા મહોત્સવ

સોનગઢ

श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव एवं श्री बाहुबली मुनीन्द्र महामस्तकाभिषेक

वीर संवत २५५०, पोष सुद ९ से पोष वद १ तक

शुक्रवार, १९ जनवरी से शुक्रवार, २६ जनवरी, २०२४ तक

आयोजक - श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ

प्रकाशकीय

वीतराग दिगम्बर जैनधर्म के सातिशय प्रभावक अध्यात्ममूर्ति स्वात्मानुभवी सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने अध्यात्मतत्त्व के रहस्योद्घाटन के साथ साथ **देव-शास्त्र-गुरु की सम्यक पहिचान देकर मुमुक्षु समाज के ऊपर अनन्त उपकार किया है।** पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्री के धर्मप्रभावनायोग से मुमुक्षु समाज में जिनेन्द्र-पूजा, भक्ति इत्यादि की प्रवृत्ति नियमित चल रही है। पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य बहिनश्री स्वयं भी सोनगढ़ में नियमितरूप से जिनेन्द्र भक्ति आदि कार्यक्रमों में उपस्थित रहते थे। उनके ही पुण्य प्रताप से सौराष्ट्र, गुजरात, सम्पूर्ण भारत एवं नैरोबी (अफ्रीका) जैसे विदेशों में भी अध्यात्म प्रचार के साथ-साथ जिनमंदिर निर्माण एवं पंचकल्याणक और वेदी प्रतिष्ठा का युग चला एवं वर्तमान में भी जारी है।

इसी कडी में **श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिंब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, सोनगढ** के पावन प्रसंग पर पंचकल्याणक एवं वेदी प्रतिष्ठाओं के समय किया जानेवाला **श्री यागमण्डल विधान** एवं **उसके प्रत्येक श्लोक के गुजराती व हिन्दी भावार्थ इस पुस्तक में सम्मिलित हैं**। जिससे प्रतिष्ठा में उपस्थित समस्त मुमुक्षु समाज लाभान्वित होगा।

इस प्रकाशन के अवसर पर हम हमारे **प्रतिष्ठा-पथप्रदर्शक आचार्य वसुनन्दि (अपरनाम श्री जयसेन आचार्य)** आदि समस्त दिगम्बर मुनिराजों एवं स्मृतिशेष समस्त आदरणीय विद्वानों के योगदान को स्मृतिपट पर अंकित करते हैं। इस यागमण्डल विधान का दृशिकरण एवं पुस्तक संयोजन यागमण्डल विधान की टीम ने किया है। गुजराती अनुवाद का कार्य श्री प्रशमभाई मोदी, सोनगढ एवं हिन्दी अनुवाद प्रतिष्ठा पाठ, इन्दौर से साभार प्राप्त हुआ है। संशोधन कार्य में श्री जीतूभाई नागरदास मोदी का विशिष्ट सहयोग रहा है। संशोधन आदि के मार्गदर्शन देने के लिये प्रतिष्ठाचार्य विद्वानश्री सुभाषभाई शेठ, वांकानेर एवं प्रतिष्ठाचार्य ब्र. हेमंतभाई गांधी, सोनगढ उक्त

दोनों विद्वानों के प्रति प्रकाशनसमिति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

दिगंबर जैन शुद्ध तेरापंथी आम्नाय अनुसार प्रकाशित इस पूजन एवम् विधान के आध्यात्मिक भावों के माध्यम से भव्य जीवों तत्त्वज्ञान की अभिरुचि की वृद्धिपूर्वक ज्ञायक-सन्मुखता साधने में अग्रेसर हो ऐसी मंगल भावना सह...

श्री आदिनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव अंतर्गत जम्बूद्वीप शाश्वत जिनेन्द्र एवं श्री बाहुबली मुनिवर प्रतिष्ठापन
वीर संवत - २५५०, पौष शुक्ल ९; दि. १९-०१-२०२४

साहित्य प्रकाशन समिति,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ

सुवर्णपुरी सोनगढ में विराजित श्री सीमंधर भगवान

श्री सीमंधर जिनराज की महिमा अगम अपार।
सुर - नर मुनि जिनको सदा, नावत बारम्वार ॥

श्री जयसेनाचार्य जी

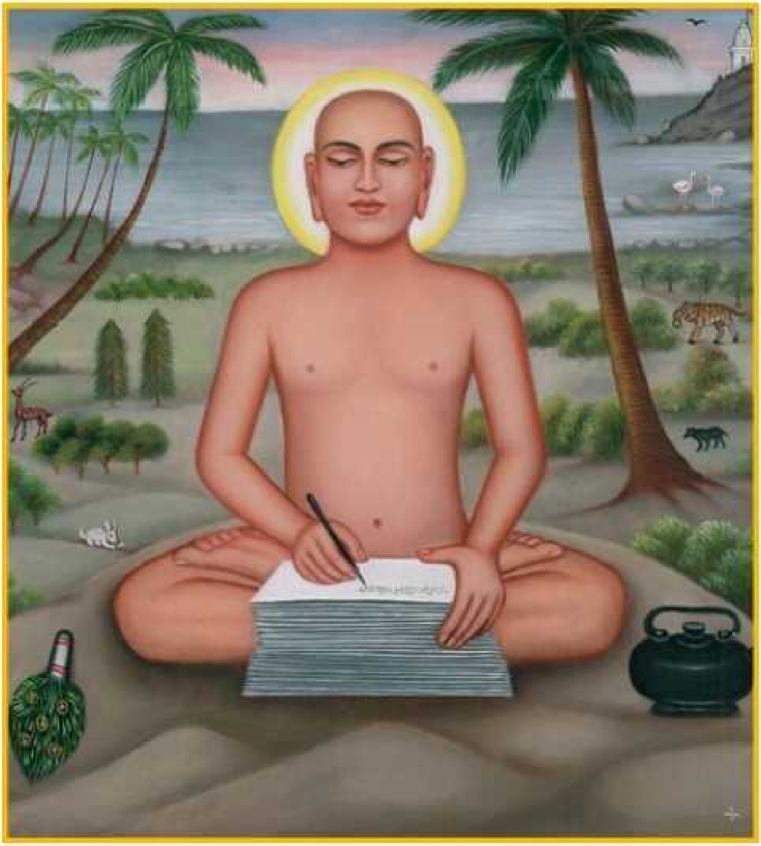

हे गुरुवर शाश्वत सुखदर्शक, यह नग्न स्वरुप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है॥

अध्यात्ममूर्ति परमोपकारी
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

यह महोत्सव अनन्त भवों का नाशक है।

(पंचकल्याणक प्रवचन, पृष्ठ २५)

प्रशममूर्ति भगवतीमाता
पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन

आत्मार्थी को स्वाध्याय करना चाहिये, विचार-मनन करना चाहिये; यही आत्मार्थी की खुराक है।

॥बोल-२४॥

संक्षिप्त परिचय

आचार्य वसुनन्दि (जयसेन) द्वारा रचित प्रतिष्ठासार संग्रह के अन्तर्गत एवं पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में अनिवार्य रूप से होने वाले यागमण्डल विधान के संबंध में अत्यल्प जानकारी आगम में प्राप्त होती है। चूँकि हमें प्रत्येक जिनबिंब प्रतिष्ठा में इसका आयोजन अनिवार्य रूप से देखने को मिलता है अतः इसके विषय में जानकारी होना अनिवार्य सा हो जाता है। इसीलिये सर्वप्रथम यागमण्डल विधान का अर्थ देखते हैं...

याग अर्थात् पूज्य... अर्थात जो पूज्य पुरुषों (नव देवता) का समूह है उनके गुणों का विस्तार (विधान), इसी का नाम है यागमण्डल विधान।

यागमण्डल विधान क्यों कराया जाता है ? इसका भी उत्तर अत्यंत सरल है। यागमण्डल विधान के माध्यम से पञ्च परमेष्ठी, जिन-प्रतिमा, जिनमन्दिर, जिनवाणी (शास्त्र) और जिनधर्म - इन नव देवताओं की पूजन की जाती है। इस पूजन के द्वारा हम भूत-भविष्य-वर्तमान के तीर्थंकर परमात्माओं को एवं पंच परमेष्ठी को उनके समस्त गुणों और उन गुणों से निर्मल उनके आत्मस्वरूप को, ६४ ऋद्धियों से युक्त मुनिराजों को अर्घ्य समर्पित करते हैं।

इस पूजन के माध्यम से उक्त समस्त देव-शास्त्र-गुरु का आह्वानन किया जाता है तथा पूजन-विधान के माध्यम से यह भावना की जाती है कि हे देव-शास्त्र-गुरु! हम आपके सान्निध्य में यह पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा कराना चाहते हैं; **कृपया आप हमें आशीर्वाद देवें, जिससे हम शुद्ध मन-वचन-काय से यह महान कार्य सम्पन्न कर सकें।**

यागमण्डल विधान में समर्पित किये जाने वाले अर्घ्यों की संख्या भी स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण जानकारी का विषय है, क्योंकि इस विधान के अन्तर्गत

नवदेवताओं को विस्तारपूर्वक अर्घ्य समर्पित किये गये हैं। उनके अर्घ्यों की संख्या और विषय विभाजन कुछ इस प्रकार है।

अर्घ्यों की संख्या और विषय विभाजन

क्र.	वलय (घेरा)	विषय	अर्घ्य संख्या
१	प्रथम	पंच परमेष्ठी	५
२	-	चार मंगल, उत्तम, शरण	१२
३	द्वितीय	भूतकाल के २४ तीर्थंकर	२४
४	तृतीय	वर्तमान के २४ तीर्थंकर	२४
५	चतुर्थ	भविष्य के २४ तीर्थंकर	२४
६	पंचम	विहरमान २० तीर्थंकर	२०
७	षष्ठम	आचार्य परमेष्ठी के मूलगुण	३६
८	सप्तम	उपाध्याय परमेष्ठी के मूलगुण	२५
९	अष्टम	साधु परमेष्ठी के मूलगुण	२८
१०	नवम	६४ ऋद्धिधारी मुनिराजों के अर्घ्य	४८
११	-	जिनप्रतिमा	१
१२	-	जिनमंदिर	१
१३	-	जिनवाणी	१
१४	-	जिनधर्म	१
सबके अंत में सामूहिक अर्घ्य			
कुल विशिष्ट विषयगत अर्घ्य संख्या			२६१

इस प्रकार हम २६१ अर्घ्यों की संख्या एवम् विषय विभाजन और अनुक्रमणिका प्रस्तुत कर के हम यागमण्डल विधान की पूर्णता की ओर अग्रेसर होतें हैं और विधिनायक भगवान के समक्ष पंचकल्यणक की निर्विघ्न पूर्णता की भावना करते हैं ।

अनुक्रमणिका

क्र.	वलय(घेरा)	विषय	अर्घ्य संख्या	पृष्ठ क्र.
१	-	मुख्य पृष्ठ - श्री यागमण्डल विधान	-	I
२	-	प्रकाशन अवसर	-	II
३	-	प्रकाशकीय निवेदन	-	III
४	-	देव-शास्त्र-गुरु	-	V-VIII
५	-	संक्षिप्त परिचय	-	IX
६	-	अनुक्रमणिका	-	XII
७	-	मंगलाचरण	-	१
८	-	अष्टक	-	१०
९	प्रथम	पंच परमेष्ठी	५	१९
८	प्रथम	चार मंगल, उत्तम, शरण	१२	२५
९	द्वितीय	भूतकाल के २४ तीर्थंकर	२४	३८
१०	तृतीय	वर्तमान के २४ तीर्थंकर	२४	६४
११	चतुर्थ	भविष्य के २४ तीर्थंकर	२४	९०
१२	पंचम	विहरमान २० तीर्थंकर	२०	११६
१३	षष्ठम	आचार्य परमेष्ठी के मूलगुण	३६	१३८
१४	सप्तम	उपाध्याय परमेष्ठी के मूलगुण	२५	१७६
१५	अष्टम	साधु परमेष्ठी के मूलगुण	२८	२०३
१६	नवम	६४ ऋद्धिधारी मुनिराजों के अर्घ्य	४८	२३३

अनुक्रमणिका

क्र.	वलय(घेरा)	विषय	अर्घ्य संख्या	पृष्ठ क्र.
१७	-	जिनप्रतिमा	१	२८३
१८	-	जिनमंदिर	१	२८४
१९	-	जिनवाणी	१	२८५
२०	-	जिनधर्म	१	२८६
२१	-	अंतिम पृष्ठ - अध्यात्मतीर्थ श्री सुवर्णपुरी सोनगढ	-	२९०

मंगलाचरण

॥१॥

अचिंत्यचिंतामणिकल्पवृक्ष,
रसायनाधीश्वरमादिदेवं ।
वंदामहे सृष्टिविधानमूढ,
प्राणिप्रणेतारमबाध्यवाक्यं।।

ભાવાર્થ :– અચિંત્ય ચિંતામણિ કલ્પવૃક્ષરૂપ રસાયણના સ્વામી તથા સૃષ્ટિના વિધાતા, અજ્ઞાની પ્રાણીઓને યથાર્થ ઉપદેશ કરવાવાળા તથા જેમના વચન નિર્બાધ છે એવા આદિ તીર્થંકરને અમે નમસ્કાર કરીએ છીએ. ॥૧॥

भावार्थ :– अचिन्त्य चिंतामणि, कल्पवृक्ष रूप रसायन के स्वामी तथा सृष्टि के विधाता, अज्ञानी प्राणियों को यथार्थ उपदेश करने वाले एवं निर्बाध हैं वचन जिनके ऐसे आदि तीर्थंकर को हम नमस्कार करते हैं। ॥१॥

मंगलाचरण

॥२॥

स्याद्वादविद्यामृततर्पणेन,
सुप्तं जगद्बोधयितारमर्च्यं ।
श्रीकुंदकुंदादिमुनिं प्रणम्य,
श्रीमूलसंघे प्रणयामि यज्ञं ॥

ભાવાર્થ :– મોહનિદ્રામાં સૂતેલા જગતને સ્યાદ્વાદવિદ્યાનું પાન કરાવીને પ્રતિબોધિત કરવાવાળા પૂજ્ય શ્રી કુંદકુંદ આદિ મુનિઓને પ્રણામ કરીને શ્રી મૂળસંઘમાં પ્રતિષ્ઠા વિધાન રચું છું. ॥૨॥

भावार्थ :– मोहनिद्रा में सोये जगत को स्याद्वाद विद्या का पान कराकर प्रतिबोधित करने वाले पूज्य श्री कुन्दकुन्द आदि मुनियों को प्रणाम करके श्री मूलसंघ में प्रतिष्ठा विधान को रचता हूँ। ।।२।।

मंगलाचरण

॥३॥

एवं समासादितवेदिकादि,
प्रतिष्ठयोपक्रियया दृढार्थ:।
पुष्पांजलिक्षेपणमत्रसार्थे,
वितीर्य यागोद्धरणे यतेऽहं ॥

ભાવાર્થ :– વેદિક આદિ પ્રતિષ્ઠારૂપ સામગ્રીથી હું દૃઢ પ્રયોજન ભાવાર્થે સમસ્ત પાત્રો ઉપર પુષ્પાંજલિ ક્ષેપણ કરીને યાગમંડળ માટે પ્રયત્ન કરું છું. ॥૩॥

भावार्थ :– वेदिकादि प्रतिष्ठारूप सामग्री से मैं दृढ़ प्रयोजन से समस्त पात्रों पर पुष्पांजलि क्षेपण कर यागमंडल के लिए यत्न करता हूँ। ॥३॥

मंगलाचरण

॥४॥

ॐ जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु
नंद नंद नंद पुनीहि पुनीहि पुनीहि ।
ॐ णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूँणं ।

ભાવાર્થ :– ૐ પંચપરમેષ્ઠિ જયવંત હો, જયવંત હો, જયવંત હો, નમસ્કાર હો, નમસ્કાર હો, નમસ્કાર હો, આનંદ હો, આનંદ હો, આનંદ હો, પવિત્ર કરો, પવિત્ર કરો, એમ ઉચ્ચાર કરીને નમસ્કાર મંત્ર ગણવા. ॥૪॥

भावार्थ :– ॐ पंचपरमेष्ठी जयवंत हों, जयवंत हों, जयवंत हों, नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, आनंद हो, आनंद हो, आनंद हो, पवित्र करो, पवित्र करो, ऐसा पढ़कर णमोकार मंत्र बोलें। ॥४॥

॥५॥

मध्ये तेजस्तदंगे वलयितसरणौ पंच पूज्योत्तमादि
द्वादश्यर्चा द्वितीये चतुरधिकसुविंशा जिना भूतकाला: ।
अग्रेष्ट्योर्वर्तमाना अवतरणकृतोऽग्रे विदेहस्थपूज्या
आचार्या: पाठका: स्युर्मुनिवरसुगुणा वह्निवृत्ते निवेश्या: ।।

ભાવાર્થ :– મધ્યમાં ઓમકાર, પછીના વલયમાં પંચ પરમેષ્ઠી તથા પૂજ્ય બાર મંગળ, ઉત્તમ, શરણ; બીજા વલયમાં ભૂતકાળના ચોવીસ તીર્થંકર, આગળના બે વલયમાં વર્તમાન અને ભવિષ્યના ચોવીસ તીર્થંકર, તેના પછીના આગળના વલયમાં વિદેહના વિદ્યમાન વીસ તીર્થંકર, તેના પછીના આગળના વલયમાં આચાર્ય, આગળના વલયમાં ઉપાધ્યાય, તેના પછીના વલયમાં સાધુ પરમેષ્ઠી ક્રમશઃ સ્થાપિત કરવા. ।।૫।।

भावार्थ :– मध्य में ॐकार, आगे वलय में पंचपरमेष्ठी तथा पूज्य द्वादश मंगल, उत्तम, शरण; द्वितीय वलय में चौबीस तीर्थंकर भूतकाल के आगे के दो वलयों में क्रमश: वर्तमान और भविष्य के तीर्थंकर उससे आगे के वलय में विदेह के विद्यमान बीस तीर्थंकर उसके बाद के वलय में आचार्य, अगले वलय में उपाध्याय, उसके बाद के वलय में साधु परमेष्ठी क्रमशः स्थापित करना। ॥५॥

मंगलाचरण

॥६॥

तेषामग्रिमवृत्तके गणधरा ऋद्धिप्रशस्ताश्चतु
दिक्षु स्युः क्षितिमंडले जिनगृहं चैत्यागमौ सद्वृषाः।
एवं स्युर्निधयो नवापरविधैर्युक्ता इहाभ्युद्धृते
सद् यागार्चनमंडले विलिखिताः पूज्याः स्वमंत्रैः सदा ।।

ભાવાર્થ :– તેના પછી ઋદ્ધિધારી ગણધર અને ચારે દિશાઓમાં પૃથ્વી મંડળમાં ચૈત્ય, ચૈત્યાલય, જિનાગમ, જિનધર્મ આ રીતે નવ વલયમાં નવ નિધિ કે જે અહીં ઉપર વિધિવત દર્શાવ્યા છે તે આ યાગમંડળમાં લખેલ છે, તે દરેક વલયના પોતપોતાના મંત્રોથી સદાય પૂજવા યોગ્ય છે. પહેલાંમાં સત્તર, બીજામાં ચોવીસ, ત્રીજામાં ચોવીસ, ચોથામાં ચોવીસ, પાંચમામાં વીસ, છઠ્ઠામાં છત્રીસ, સાતમામાં પચ્ચીસ, આઠમામાં અઠ્યાવીસ, નવમામાં અડતાલીસ, ચારેય ખૂણામાં ચાર પ્રકારના કોઠાઓનો ક્રમ જાણવો જોઈએ. ।।૬।।

भावार्थ :– उनके आगे ऋद्धिधारी, गणधर और चारों दिशाओं में पृथ्वीमंडल में चैत्य, चैत्यालय, जिनागम, जिनधर्म इस प्रकार नव वृत्त (वलय) में नवनिधि जो ऊपर विधि युक्त यहाँ वर्णित किया, इस यागमंडल में लिखा हुआ है, अपने-अपने मंत्रों से सदा ही पूजने योग्य हैं । प्रथम में १७, द्वितीय में २४, तृतीय में २४, चतुर्थ में २४, पंचम में २०, षष्ट में ३६, सप्तम में २५, अष्टम में २८, नवम में ४८, चारों कोणों में चार प्रकार कोठों का क्रम जानना चाहिए। ॥६॥

मंगलाचरण

।।७।।

द्विशतोत्तरत: पंचाशत् स्थानं,
सुपूजयति यो धीमान् ।
निर्धूतकलुषनिकरो,
जिनबिंबस्थापको भवति ।।

ભાવાર્થ :– આ રીતે જે બુદ્ધિમાન બસો પચાસ સ્થાનની પૂજા કરે છે તે સર્વ પાપને ધોઈને જિનબિંબનો સ્થાપક થાય છે. ।।૭।।

भावार्थ :– इस प्रकार जो बुद्धिमान दो सौ पचास स्थानों की पूजा करता है वह समस्त पापों को धोकर जिनबिंब का स्थापक होता है। ॥७॥

मंगलाचरण

।।८।।

एतेषां निधिसंज्ञायागेश, सर्गपतिमंडलाधीशा: ।
कथ्यंते विधिविज्ञै:, संकेतितमिदं ग्रंथसंबद्धं ।।

ભાવાર્થ :– વિધિને જાણવાવાળા નિધિ, યજ્ઞપતિ, સર્ગપતિ, મંડલાધીશ આ સંજ્ઞા છે. આ ગ્રંથ સંબંધિત સંકેતત છે. ।।૮।।

भावार्थ :– निधि को जानने वाले विधि, यज्ञपति, सर्गपति, मण्डलाधीश ये संज्ञा हैं । यह ग्रंथ संबंधित संकेत है। ॥८॥

मंगलाचरण

॥१॥

प्रत्यर्थिव्रजनिर्जयान्निजगुणप्राप्तावनंताक्रम-
दृष्टिज्ञानचरित्रवीर्यसुखचित्-संज्ञास्वभावाः परं ।
आगत्यात्रनिवेशितांकितपदैः संवौषडा द्विष्ठतो
मुद्रारोपणसत्कृतैश्च वषडा गृह्णीमर्चाविधिम् ।।

ॐ ह्रीं अत्र जिनप्रतिष्ठाविधाने सर्वयागमंडलोक्ता जिनमुनय अत्रावतरत अवतरत तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ममात्रसंनिहितो भवत भवत वषट् इत्यादि त्रिवारं कुर्यात् ।

ભાવાર્થ :– કર્મશત્રુઓ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરીને પોતાના ગુણોને પ્રાપ્ત થયેલા અનંત તથા ક્રમ રહિત દર્શન, જ્ઞાન, ચારિત્ર, વીર્ય, સુખ, ચૈતન્યસત્તારૂપ સ્વભાવવાળા બધા જિનમુનિ અહીં આવીને પૂજાની વિધિને ગ્રહણ કરો, તે માટે સંવોષટ્ મંત્રથી આહ્વાન, બે વાર ઠઃ ઠઃ મંત્રથી સ્થાપન તથા મુદ્રાના આરોપણથી સત્કારપૂર્વક વષટ્ પદથી નિકટતાને પ્રાપ્ત થાઓ. ત્યારબાદ મંડળના મધ્યમાં સ્થાપિત કરેલા માંડલા ઉપર (ઠૌના=માંડલું અથવા મંડલ) ઉપર બનેલા સ્વસ્તિક ઉપર સ્થાપના કરવી. આ રીતે ત્રણવાર ઉચ્ચાર કરવો જોઈએ. ।।૯।।

भावार्थ :– कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अपने गुणों को प्राप्त हुए अनंत तथा क्रम रहित दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीर्य, सुख, चैतन्यसत्तारूप स्वभाववाले सभी जिनमुनि यहाँ आकर पूजा की विधि को ग्रहण करो, इसलिये संवौषट् मंत्र से आह्वान, दो बार ठः ठः मंत्र से स्थापन तथा मुद्रा के आरोपण से सत्कारपूर्वक वषट् पद से संनिधि को प्राप्त हों । तत्पश्चात् मंडल के मध्य में स्थापित ठोने के ऊपर बने स्वस्तिक पर स्थापना करें । इस प्रकार तीन बार पढ़ना चाहिए ॥१॥

तत्पश्चात् मंडल के मध्य में स्थापित ठोने के ऊपर बने स्वस्तिक पर स्थापना करें ।

अष्टक - जल

॥१॥

प्रांशुस्वर्णमणिप्रभाततिभृताभृंगारनालोच्छलद्
गंगासिंधुसरिन्मुखोपचितसत्पाथो भरेण त्रिधा ।
जन्मारातिविभंजनौषधिमितेनोद्-धूतगंधालिना
चाये यागनिधीश्वरानघहृते निःश्रेयसः प्राप्तये ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर-जिनमुनिभ्यो जलम् ।

ભાવાર્થ :– અત્યધિક સ્વર્ણમણિઓની કાંતિને ધારણ કરવાવાળી ઝારીની નાળીથી ઉછળતા ગંગા, સિંધુ આદિ નદીઓના મુખથી ભરેલા સુંદર જળના સમૂહથી મન, વચન, કાય દ્વારા જન્મરૂપી શત્રુના નાશ માટે ઔષધિ સમાન તથા જેની સુગંધથી ભમરાઓ ગુંજારવ કરી રહ્યા છે એવા જળથી હું મારા પાપોનો નાશ અને મોક્ષસુખની પ્રાપ્તિ માટે યાગમાં આહૂત પંચપરમેષ્ઠીની પૂજા કરું છું. આ રીત જળધારા કરવી. ।।૧।।

भावार्थ :– अत्यधिक स्वर्ण-मणियों की कांति को धारण करनेवाले झारी की नाली से उछलते हुए गंगा-सिंधु आदि नदियों के मुख से भरे सुन्दर जल के समूह से मन-वचन-काय द्वारा जन्मरूपी वैरी के नाश के लिए औषधि के समान तथा जिसकी गंध से भ्रमर गुंजार कर रहे हैं ऐसे जल से मैं अपने पापों के नाश एवं मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए याग में आहूँत पंचपरमेष्ठी की पूजा करता हूँ। इस प्रकार जल धारा देना ।।१।।

अष्टक - चंदन

।।२।।

घुसृणमलयजातैश्चंदनैः शीतगंधै-
र्भवजलनिधिमध्ये दुःखदो वाडवाग्निः ।
तदुपशमनिमित्तं बद्धकक्षैर्निमज्जद्-
भ्रमरयुवभिरीडत् सांद्रसार्द्रप्रवाहैः ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्व यज्ञेश्वर-जिनमुनिभ्यश्चंदनम् ।

ભાવાર્થ :– આ સંસાર-સમુદ્રમાં વડવાનળ સમાન દુઃખદાયી તાપ છે, તેના ઉપશમન માટે ઉદ્યત, જેમાં આકર્ષિત થઈને ભમરાઓ ગુંજારવ કરી રહ્યા છે, એવા પ્રશંસાયોગ્ય સઘન પ્રવાહવાળા કોમળ ચંદનની શીતળ ગંધથી હું પૂજા કરું છું. ।।૨।।

भावार्थ :– इस संसार समुद्र में वडवानल समान दुःखदायी ताप है, उसके उपशमन के लिए उद्यत,जिसमें आकर्षित होकर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं ऐसे प्रशंसा योग्य सघन प्रवाहवाले मृदु चंदन की शीतल गंध से मैं पूजा करता हूँ। ॥२॥

अष्टक - अक्षत

।।३।।

शशांकस्पर्द्धद्भिः कमलजननैरक्षतपदा–
धिरूढैः श्रामण्यं शुचिसरलताद्यैर्गुणवरैः ।
हसद्भिः साम्राज्याधिपतिचमनार्हैः सुरभिभि–
र्जिनार्चोंघ्रिंप्राची विपुलतरपुंजैः परियजे ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वरजिनमुनिभ्योऽक्षतम् ।

ભાવાર્થ :– ચંદ્રની કાંતિ સાથે સ્પર્ધા કરવાવાળા, કીચડમાં ઉત્પન્ન થઈને પણ અક્ષયપદ તથા પવિત્રતા, સરળતા, આદિ ગુણોથી યુક્ત, મુનિઓને પ્રસન્ન કરવાવાળા ચક્રવર્તીને યોગ્ય ભોજનમાં પ્રિય સુગંધિત, સુંદર ચોખાઓનાં સમૂહથી પૂર્વદિશામાં જિનચરણની પૂજા કરું છું. ।।૩।।

भावार्थ :– चन्द्रमा की कांति से स्पर्धा करनेवाले, कीचड़ से उत्पन्न होकर भी अक्षयपद तथा शुचिता, सरलतादि गुणों से युक्त, मुनियों को प्रसन्न करनेवाले, चक्रवर्ती के योग्य भोजन में प्रिय सुगन्धित, सुन्दर तण्डुल के समूह से पूर्व दिशा में जिनचरण की पूजा करता हूँ। ॥३॥

अष्टक - पुष्प

।।४।।

दुरंतमोहानलदीप्यदंशु - कामेन नष्टीकृतमाशुविश्वं ।
तद्बाणराजीशमनाय पुष्पैर्यजामि कल्पद्रुमसंगतै र्वा ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वरजिनमुनिभ्य: पुष्पाणि ।

ભાવાર્થ :– જેનો અંત સારો નથી એવા મોહરૂપી અગ્નિથી સંતપ્ત આ કામદેવે શીઘ્ર જ સંસારને નષ્ટ કર્યો છે, તેના બાણસમૂહની શાંતિ માટે હું પુષ્પોથી અથવા કલ્પવૃક્ષોના પુષ્પોથી પૂજા કરું છું. ।।૪।।

भावार्थ :– जिसका अंत कठिन है ऐसी मोहरूपी अग्नि से संतप्त इस कामदेव ने शीघ्र ही संसार को नष्ट किया है उसके बाण-समूह की शांति के लिए मैं पुष्पों से अथवा कल्पवृक्षों के पुष्पों से पूजा करता हूँ। ॥४॥

अष्टक - नैवेद्य

।।५।।

पीयूषपिंडनिवहैर्घृतशर्करान्न-
योगोद्भवैर्नयनचित्तविलासदक्षैः।
चामीकरादिशुचिभाजनसंस्थितैर्वा-
संपूजयाम्यशनबाधनबाधनाय ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वरजिनमुनिभ्यश्चरुं ।

ભાવાર્થ :– ઘી, સાકર અને અન્નથી નિર્મિત, નેત્ર અને મનને પ્રિય તથા સુવર્ણપાત્રમાં સ્થિત અમૃત સમાન નૈવેદ્યથી ક્ષુધાની બાધા દૂર કરવા માટે પૂજા કરું છું. ।।૫।।

भावार्थ :– घी, शक्कर और अन्न से निर्मित, नेत्र और मन को प्रिय तथा सुवर्णपात्र में स्थित अमृत के समान नैवेद्य से क्षुधा की बाधा दूर करने के लिए पूजा करता हूँ। ॥५॥

अष्टक - दीप

।।६।।

अमितमोहतमोविनिवृत्तये घटितरत्नमणिप्रभवात्मभिः।
अयमहं खलुदीपकनामकैर्जिनपदाग्रभुवं परिदीपये ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर-जिनमुनिभ्यो दीपं ।

ભાવાર્થ :– રત્નમણિથી પ્રભાયુક્ત દીપકો વડે અસીમિત મોહરૂપી અંધકારની નિવૃત્તિ માટે હું નિશ્ચયથી જિનચરણોની પૂજા કરું છું. ।।૬।।

भावार्थ :– रत्न-मणियों की प्रभायुक्त दीपकों के द्वारा असीमित मोहरूपी अंधकार की निर्वृत्ति के लिए मैं निश्चय से जिन चरणाग्र में पूजा करता हूँ। ॥६॥

अष्टक - धूप

।।७।।

धूपोद् घ्राणैर्यजनविधिषु प्रीणिताशेषदिक्कै–
रुघद्वह्नावगुरुमलयापीडकान् संदहद्भिः ।।
अर्चे कर्मक्षपणकरणे कारणैराप्तवाक्यै–
र्यज्ञाधीशानिव बहुविधैर्धूपदानप्रशस्तैः ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर-जिनमुनिभ्यो धूपम् ।

ભાવાર્થ :– પૂજા વિધિમાં સુગંધિત અને સમસ્ત દિશાઓને સંતુષ્ટ કરવાવાળી, અગુરુમલયાદિક ધૂપને પ્રજ્વલિત અગ્નિમાં દહન કરી કર્મક્ષય કરવામાં કારણભૂત એવા જિનેન્દ્ર ભગવાનના વચનો દ્વારા યજ્ઞના સ્વામીની પૂજા કરું છું. ।।૭।।

भावार्थ :– पूजा विधि में सुगंधित एवं समस्त दिशाओं को संतुष्ट करने वाली अगुरुमलयादिक धूप को प्रज्वलित अग्नि में दहनकर कर्म क्षय करने में कारणभूत ऐसे जिनेन्द्र भगवान् के वचनों के द्वारा यज्ञ के स्वामी की पूजा करता हूँ। ॥७॥

अष्टक - फल

।।८।।

निःश्रेयसपदलब्ध्यै कृतावतारैः प्रमाणपटुभिरिव ।
स्याद्वादभंगनिकरैर्यजामि सर्वज्ञमनिशममरफलैः ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर-जिनमुनिभ्यः फलम् ।

ભાવાર્થ :– મોક્ષપદની પ્રાપ્તિ માટે જેણે જન્મ લીધો છે એવો હું પ્રમાણ નિપુણ સ્યાદ્વાદ ભંગના સમૂહ દ્વારા નિરંતર સર્વજ્ઞદેવની ફળો દ્વારા પૂજા કરું છું. ।।૮।।

भावार्थ :– मोक्षपद की प्राप्ति के लिए जिन्होंने जन्म लिया है प्रमाण निपुण स्याद्वाद भंग के समूह के द्वारा निरंतर सर्वज्ञदेव की अमर फलों से मैं पूजा करता हूँ। ॥८॥

अष्टक - अर्घ

।।९।।

पात्रे सौवर्णे कृतमानंदजयषक्
पूजार्हंतं विस्फुरितानां हृदयेऽत्र ।
तोयाद्यष्टद्रव्यसमेतैर्भृतमर्घं
शास्तॄणामग्रे विनयेन प्रणिदध्म: ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वरजिनेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– સુવર્ણપાત્રમાં સ્થિત તથા પૂજા કરવાવાળા પુરુષોના પ્રફુલ્લિત હૃદયમાં પૂજાને યોગ્ય એવા જળ આદિ અષ્ટદ્રવ્યથી પરિપૂર્ણ અર્ઘ, જિનશાસનકર્તા સમક્ષ વિનયથી સમર્પણ કરુ છું. ।।૯।।

भावार्थ :– सुवर्ण पात्र में स्थित तथा पूजा करनेवाले पुरुषों के प्रफुल्लित हृदय में पूजा के योग्य ऐसे जलादि अष्टद्रव्य से परिपूर्ण अर्घ से जिनशासन कर्ता के आगे विनय से समर्पण करता हूँ। ।।९।।

प्रथम वलय परिचय

वलय में अर्घ्य की संख्या : १८ (पंच परमेष्ठी के ५ अर्घ्य, चार मंगल-उत्तम-शरण ऐसे १२ अर्घ्य और १ समुच्च्य अर्घ्य)

वलय का विषय एवं संक्षिप्त परिचय : इस वलय में जो परमपद मैं स्थित है ऐसे पंच परमेष्ठी की पूजन की है। साथ ही श्री अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवलीकथित धर्म जो मंगल, उत्तम और शरणरूप है, उन प्रत्येक को अर्घ्य समर्पित किया गया है।

वलय एवं अर्घ्य का दृशिकरण : इस वलय मैं श्री अरिहंत तीर्थंकर और सामान्य केवली जो गंधकुटी सहित होते है उनका दृशीकरण किया गया है, साथ ही अष्टकर्म रहित पद्मासन और खड़्गासन सिद्ध परमेष्ठी, शिक्षा-दीक्षा के अधिकारी मुनिसंघ के नायक आचार्य परमेष्ठी, पठन-पाठन के अधिकारी उपाध्यायजी और २८ मूल गुण के धारी पद्मासन और खड़्गासन मुद्रा मैं साधु परमेष्ठी का यथावत स्वरूप दर्शाया गया है। इस लोक मैं जो स्वस्तिक रूप मंगल है, लोक मैं सबसे उत्तम है और सर्व जीवों को शरण रूप है, ऐसे अरिहंत देव, सिद्ध परमात्मा, निर्ग्रंथ साधु और केवली प्ररूपित धर्म का वास्तविक स्वरूप दर्शाने का भावनात्मक प्रयास किया गया है।

अरहंत - परमेष्ठी

॥०१॥०१॥

अनंतकालसंभवद्भवभ्रमस्यभीतितो
निवार्य संदधन् स्वयं शिवोत्तमार्यसद्मनि ।
जिनेशविश्वदर्शिविश्वनाथमुख्यनामभि:
स्तुतं जिनं महामि नीरचंदनै: फलैरहं ॥

ॐ ह्रीं अनंतभवार्णवभयनिवारकानंतगुणस्तुतायार्हतेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– સંસારી પ્રાણીને અનંતકાળથી પ્રાપ્ત થયેલા સંસારભ્રમણના ભયનું નિવારણ કરીને સ્વયં શિવરૂપ શ્રેષ્ઠ ગૃહમાં પ્રવેશ કરીને જિનેશ, વિશ્વદર્શી, વિશ્વનાથ આદિ નામોથી સ્તુત્ય થયેલા એવા શ્રી જિનેન્દ્રની જળ, ચંદન, ફળ આદિથી અમે પૂજા કરીએ છીએ. આ રીતે અનંત ભવસમુદ્રના ભયને દૂર કરવાનારા અને અનંતગુણોથી પૂજિત અરિહંત ભગવાનને અર્ઘ્ય ચડાવવો જોઈએ. ।।૧।।૧।।

भावार्थ :– संसारी प्राणी को अनंतकाल से प्राप्त हुए संसार भ्रमण के भय का निवारण कर स्वयं शिवरूप श्रेष्ठ गृह में प्रवेश कर जिनेश, विश्वदर्शी, विश्वनाथ आदि नामों से स्तुत्य हुए ऐसे श्री जिनेन्द्र की जल, चंदन, फलादि से हम पूजा करते हैं । इस प्रकार अनंत भवरूप समुद्र के भय को दूर करने वाले और अनंत गुणों से पूजित अर्हंत के लिए अर्घ देना चाहिए। ।।०१।।०१।।

सिद्ध - परमेष्ठी

॥०१॥०२॥

कर्मकाष्ठहुतभुक्स्वशक्तित:,
संप्रकाश्य महनीयभानुभि: ।
लोकतत्त्वमचले निजात्मनि,
संस्थितं शिवमहीपतिं यजे ।।

ॐ ह्रीं अष्टकर्मविनाशक निजात्मतत्वविभासकसिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं ।

ભાવાર્થ :– કર્મરૂપી લાકડીને બાળવા માટે અગ્નિ સમાન પોતાની શક્તિથી, જ્ઞાનરૂપ સૂર્ય દ્વારા જગતના તત્ત્વોને પ્રકાશિત કરીને, અચળ, નિજ આત્મતત્ત્વમાં સ્થિત એવા મોક્ષરૂપી પૃથ્વીના સ્વામી સિદ્ધ પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. આ રીતે અષ્ટકર્મ -વિનાશકર્તા નિજ આત્મતત્ત્વના પ્રકાશક સિદ્ધ પરમેષ્ઠીને અર્ઘ્ય ચડાવવો જોઈએ. ।।૧।।૨।।

भावार्थ :– कर्मरूपी लकड़ी को जलाने हेतु अग्नि के समान, अपनी शक्ति से ज्ञानरूप सूर्य के द्वारा जगत् के तत्त्वों को प्रकाशित कर, अचल निज आत्मतत्त्व में स्थित ऐसे मोक्षरूपी पृथ्वी के स्वामी सिद्धपरमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। इस प्रकार अष्टकर्म विनाशन कर्त्ता निज आत्मतत्त्व के प्रकाशक सिद्धपरमेष्ठी को अर्घ देना चाहिए। ।।०१।।०२।।

आचार्य - परमेष्ठी

॥०१॥०३॥

सार्थवाहमनवद्यविद्यया
शिक्षणान्मुनिमहात्मनां वरं ।
मोक्षमार्गमलघुप्रकाशकं,
संयजे गुरुपरंपरेश्वरम् ।।

ॐ ह्रीं अनवद्यविद्याविद्योतनायाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- નિર્દોષ સ્યાદ્વાદ વિદ્યાથી મહા મુનિરાજોને શિક્ષા આપીને ઉત્કૃષ્ટ મોક્ષમાર્ગને શીઘ્ર પ્રકાશિત કરવાવાળા એવા ગુરુ પરંપરાના સ્વામી આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. આ રીતે, નિર્મળ વિદ્યાના પ્રકાશક, આચાર્ય પરમેષ્ઠીને અર્ઘ્ય ચડાવવો જોઈએ. ।।૧॥૩॥

भावार्थ :- निर्दोष स्याद्वाद विद्या से महामुनिराजों को शिक्षा देकर उत्कृष्ट मोक्षमार्ग को शीघ्र प्रकाशित करनेवाले ऐसे गुरुपरम्परा के स्वामी आचार्यपरमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। इस प्रकार निर्मल विद्या के प्रकाशक आचार्य परमेष्ठी को अर्घ देना चाहिए। ॥०१॥०३॥

उपाध्याय - परमेष्ठी

॥०१॥०४॥

द्वादशांगपरिपूर्णसच्छुतं यः,
परानुपदिशेत पाठतः ।
बोधयत्यभिहितार्थसिद्धये,
तानुपास्य यजयामि पाठकान् ।।

ॐ ह्रीं द्वादशांगपरिपूर्णश्रुतपाठनोद्यतबुद्धिविभवोपाध्याय परमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– આ રીતે દ્વાદશાંગના ધારી ઉપાધ્યાય પરમેષ્ઠીને અર્ધ્ય ચડાવવો જોઈએ. જેઓ દ્વાદશાંગથી પૂર્ણ શ્રુતને અભિહિત ભાવાર્થની સિદ્ધિ માટે બીજાને ભણાવે છે તથા સ્વયં ભણે છે એવા ઉપાધ્યાય પરમેષ્ઠીની સેવાપૂર્વક પૂજા કરું છું. ॥૧॥૪॥

भावार्थ :– जो द्वादशांग से पूर्ण श्रुत को अभिहित भावार्थ की सिद्धि के लिए दूसरों को पढ़ाते हैं तथा स्वयं पढ़ते हैं, उन उपाध्याय परमेष्ठी की सेवा पूर्वक पूजा करता हूँ। इस प्रकार द्वादशांग के धारी उपाध्याय परमेष्ठी को अर्घ देना चाहिए। ॥०१॥०४॥

साधु - परमेष्ठी

॥०१॥०५॥

उग्रमर्घ्यतपसाभिसंस्कृतिं,
ध्यानभानविनिवेशितात्मकं ।
साधकं शिवरमासुखामृते,
साधुमीड्यपदलब्धयेऽर्चये ।।

ॐ ह्रीं घोर तपोऽभिसंस्कृतध्यानस्वाध्यायनिरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- ઉગ્ર અને શ્રેષ્ઠ તપથી સંસ્કારપ્રાપ્ત આત્માને જ્ઞાન, ધ્યાનમાં લીન રાખવાવાળા મુક્તિલક્ષ્મી સુખના સાધક સાધુ પરમેષ્ઠીની હું પૂજ્યપદની પ્રાપ્તિ માટે પૂજા કરુ છું. આ રીતે ઘોર તપથી સંસ્કારપ્રાપ્ત ધ્યાન, સ્વાધ્યાયમાં સાવધાન સાધુ પરમેષ્ઠીને અર્ઘ્ય ચડાવવો જોઈએ. ।।૧।।૫।।

भावार्थ :- उग्र और श्रेष्ठ तप से संस्कार प्राप्त आत्मा को ज्ञान-ध्यान में लीन रखने वाले, मुक्तिलक्ष्मी सुख के साधक साधुपरमेष्ठी की मैं पूज्यपद की प्राप्ति के लिए पूजा करता हूँ। इस प्रकार घोर तप से संस्कार प्राप्त ध्यान, स्वाध्याय में सावधान साधुपरमेष्ठी को अर्घ देना चाहिए। ॥०१॥०५॥

अरहंत - मंगल

॥०१॥०६॥

अर्हन्नेवत्रिभुवनजनानंदनान्मंगलाग्र्यो।
विघ्नध्वंसं निजमतिकृतादस्त्रसंघोपनोदात् ।
संकुर्वंस्तत्प्रकृतिरपि नः स्पष्टमानंददायि-
न्येवं स्मृत्वा जलचरुफलैरर्चयामि त्रिवारं ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिमङ्गलायाऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– અરિહંત પરમેષ્ઠી જ ત્રણ જગતના પ્રાણીઓને આનંદદાયી હોવાથી પરમ મંગલ છે. પોતાના જ્ઞાનશક્તિરૂપી અસ્ત્રના પ્રહારથી વિઘ્નોનો નાશ કરવાવાળા છે, જેમની વીતરાગ મુદ્રા જ અત્યંત આનંદ આપવાવાળી છે, હું તેમનું સ્મરણ કરીને જળ, ફળ આદિ અર્ઘ્યથી ત્રણવાર પૂજા કરું છું. આ રીતે અરિહંત પરમેષ્ઠી મંગળને અર્ઘ્ય ચડાવવો જોઈએ. ।।૧।।૬।।

भावार्थ :– अर्हंत परमेष्ठी ही तीन जगत् के प्राणियों को आनंद देने से परम मंगल हैं, अपने ज्ञानशक्तिरूप अस्त्र के प्रहार से विघ्नों का नाश करने वाले हैं, जिनकी वीतराग मुद्रा ही अत्यंत आनंद को देने वाली है, मैं उनका स्मरण करके जल फलादि अर्घ्य से तीन बार पूजा करता हूँ। । इस प्रकार अर्हंत परमेष्ठी मंगल को अर्घ देना चाहिए। ॥०१॥०६॥

सिद्ध - मंगल

॥०१॥०७॥

स्मारं स्मारं गुणगणमणिस्फारसामर्थ्यमुच्चै-
र्यत्प्राप्त्यर्थं प्रयतति जनो मोक्षतत्त्वेऽनवद्ये ।
प्रत्यूहान्तं भवभवगतानां विघ्नघातप्रक्लृप्त्यै
सिद्धानेव श्रुतिमतिबलादर्चये संविचार्य ।।

ॐ ह्रीं सिद्धमंगलेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– આ સંસારી પ્રાણી જેમના ગુણરૂપી રત્નોના પ્રચુર સામર્થ્યથી સ્મરણ કરીને તેમની પ્રાપ્તિ માટે શ્રેષ્ઠ મોક્ષતત્ત્વમાં પ્રયત્ન કરે છે, હું સંસાર સંબંધી વિઘ્નોની નિવૃત્તિ માટે શાસ્ત્રબળથી સમ્યક્ વિચાર કરીને સિદ્ધ મંગળની પૂજા કરું છું. ।।૧।।૭।।

भावार्थ :– यह संसारी प्राणी जिनके गुणरूपी रत्नों का प्रचुर सामर्थ्य से स्मरण करके उनकी प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ मोक्ष तत्त्व में प्रयत्न करता है, मैं संसार संबंधी विघ्नों की निवृत्ति के लिए शास्त्र बल से सम्यक् विचार कर सिद्ध मंगल की पूजा करता हूँ। ॥०१॥०७॥

साधू - मंगल

॥०१॥०८॥

रागद्वेषोरगपरिशमे मंत्ररूपस्वभावा
मित्रे शत्रौ समकृतहृदानंदमांगल्यरूपा: ।
येषां नामस्मरणमपि सन्मंगलं मुक्तिदायी–
त्यर्चे यज्ञं वसुविधविधिप्रीणनै: प्राणिपूज्यं ।।

ॐ ह्रीं साधु मंगलायाऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– રાગ - દ્વેષરૂપ સર્પનો ઉપશમ કરવામાં મંત્ર સ્વભાવવાળા, શત્રુ અને મિત્રમાં સમાન હૃદયવાળા, આનંદ અને મંગળરૂપ જેમના મંગળ નામનું સ્મરણ જ મુક્તિ આપવાવાળું છે એવા પ્રાણીમાત્રથી પૂજ્ય સાધુ મંગળને આ યજ્ઞમાં પૂજા કરું છું. ।।૧।।૮।।

भावार्थ :– राग-द्वेष रूप सर्प के उपशम करने में मंत्र स्वभाव वाले, शत्रु और मित्र में समान हृदय वाले आनंद और मंगलरूप जिनका मंगल नाम का स्मरण ही मुक्ति को देनेवाला है ऐसे प्राणी मात्र से पूज्य साधु मंगल की इस यज्ञ में पूजा करता हूँ। ॥०१॥०८॥

धर्म - मंगल

॥०१॥०९॥

मूर्च्छा मूर्च्छा गुरुलघुभिदा द्वैधवर्त्मप्रदिष्टो
जैनो धर्म: सुरशिवगृहद्वारदर्शी नितांतं ।
सेव्यो विघ्नप्रहणनविधावुत्तमार्थे: प्रशस्त:
संपूजेऽहं यजनमननोद्दामसिद्धयर्थमहयं ।।

ॐ ह्रीं केवलीप्रज्ञप्तधर्ममंगलायाऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– મૂર્છાનો ત્યાગ અને એકદેશ મૂર્છાના ભેદથી જિનધર્મ સંબંધી માર્ગ ક્રમશઃ સ્વર્ગ અને મોક્ષના દ્વારને દેખાડવાવાળો છે. તેથી વિઘ્નોના નાશની વિધિમાં ઉત્તમાર્થ મોક્ષની પ્રાપ્તિ માટે હું યજ્ઞવિધાનની સિદ્ધિ માટે પૂજા કરું છું. ।।૧।।૯।।

भावार्थ :– मूर्छा का त्याग और एक देश मूर्छा के भेद से जिनधर्म संबंधी मार्ग क्रमश: स्वर्ग और मोक्ष के द्वार को दिखानेवाला है अत: विघ्नों के नाश की विधि में उत्तमार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए मैं यज्ञ विधान की सिद्धि के लिए पूजा करता हूँ। ॥०१॥०९॥

अरहंत - उत्तम

॥०१॥१०॥

येषां पादस्मृतिसुखसुधायोगतस्तीर्थनाम
प्रापु: पुण्यं यदवनतिना जन्मसार्थं लभंते ।
लोकाधात्र्यां वनगिरिभुवश्चोत्तमत्वं जिनेंद्रा-
नर्चे यज्ञप्रसवविधिषु व्यक्तये मुक्तिलक्ष्म्या: ।।

ॐ ह्रीं अर्हल्लोकोत्तमेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- જેમના ચરણોના સુખામૃતમય યોગથી વન, પર્વતની પૃથ્વી પવિત્ર તીર્થ કહેવાય છે, જેમના નમસ્કાર, દર્શન આદિથી પ્રાણી પોતાના જન્મને સાર્થક અને ઉત્તમ માને છે એવા જિનેન્દ્રની હું મુક્તિની પ્રગટતા માટે યજ્ઞની પ્રારંભિક વિધિમાં પૂજા કરું છું. ।।૧।।૧૦।।

भावार्थ :- जिनके चरणों के सुख अमृत के योग से वन, पर्वत की पृथ्वी पवित्र तीर्थ कहलाती है, जिनके नमस्कार दर्शन आदि से प्राणी अपने जन्म को सार्थक व उत्तम मानते हैं, ऐसे जिनेन्द्र की मैं मुक्ति की प्रकटता के लिए यज्ञ की प्रारंभिक विधि में पूजा करता हूँ। ॥१॥१०॥

सिद्ध - उत्तम

॥०१॥११॥

दृष्टिज्ञानप्रतिभटतया कर्ममीमांसयाऽन्यान्
श्वभ्रे संपादयति विविधा वेदना: संकरोति ।
तेषां मूलं निविडपरमज्ञानखड्गेन हत्वा
नि:कर्मत्वं समधिगतवानर्च्यते सिद्धनाथ: ।।

ॐ ह्रीं सिद्धलोकोत्तमायाऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– આ કર્મ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાનનો વેરી છે, તે જીવોને નરક પ્રાપ્ત કરાવીને અનેક પ્રકારની વેદના આપે છે. સિદ્ધ પરમેષ્ઠીએ જ્ઞાનરૂપ ખડગથી તે કર્મોના મૂળ રાગ-દ્વેષને નષ્ટ કરી નિષ્કર્મ અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરી લીધી છે તેથી આપણે તેમની પૂજા કરીએ છીએ. ।।૧।।૧૧।।

भावार्थ :– यह कर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान का वैरी है यह जीवों को नरक प्राप्त कराके नाना प्रकार की वेदना देता है, सिद्ध-परमेष्ठी ने ज्ञानरूप खड्ग से उन कर्मों के मूल राग-द्वेष को नष्ट कर निष्कर्म अवस्था को प्राप्त कर लिया है, इसलिए हम उनकी पूजा करते है। ॥१॥११॥

साधू - उत्तम

॥०१॥१२॥

सूर्याचंद्रौ मरुदधिपतिर्भूमिनाथोऽसुरेंद्रो
यस्यांघ्र्यब्जे प्रणतशिरसा लोलुठीति त्रिशुद्ध्या ।
सोऽयं लोके प्रवरगणनापूजित: किं न वा स्याद्
यस्मादर्चे मुनिपरिवृढं स्वानुभावप्रसत्त्या ।।

ॐ ह्रीं साधुलोकोत्तमेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– લોકમાં સૂર્ય, ચંદ્ર, દેવેન્દ્ર, ચક્રવર્તી તથા અસુરેન્દ્ર દ્વારા મન - વચન - કાયાથી સાધુના ચરણકમળ જો પૂજનીય છે તો અન્ય દ્વારા પૂજનીય કેમ ન હોય? તેથી કલ્યાણની પ્રાપ્તિ માટે હું મુનિવરની પૂજા કરું છું. ।।૧।।૧૨।।

भावार्थ :– लोक में साधु के चरणकमल जब सूर्य-चन्द्रमा, देवेन्द्र, चक्रवर्ती तथा असुरेन्द्र के द्वारा मन, वचन, काय से पूजनीय हैं तब अन्य के द्वारा पूजनीय क्यों नहीं होंगे ? अत: कल्याण की प्राप्ति के लिए मैं मुनिवर की पूजा करता हूँ। ॥१॥१२॥

धर्म - उत्तम

॥०१॥१३॥

यत्र प्राणिप्रवरकरुणा यत्र मिथ्यात्वनाशो
यत्रोपांते शिवपदसमान्वेषणां कामनष्टि: ।
यत्र प्रोक्ता दुरितविरति: सोयमग्र् कथं न
यस्माद् धर्मो निखिलहितकृत् पूज्यतेऽसौ मयाऽपि ।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तधर्मलोकोत्तमायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના દ્વારા પ્રાણીઓની ઉત્તમ દયા છે, મિથ્યાત્વનો નાશ છે, અંતમાં મોક્ષમાર્ગનું અન્વેષણ છે, કામનો નાશ છે તથા પાપોથી પૂર્ણ વૈરાગ્ય - ઉપદેશ છે, તે જ ધર્મ સમસ્ત પ્રાણીઓને હિતકર્તા છે. તેથી તે શ્રેષ્ઠ કેમ ન હોય? હું પણ તે ધર્મની પૂજા કરું છું. ।।૧।।૧૩।।

भावार्थ :– जिसके द्वारा प्राणियों की उत्तम दया है, मिथ्यात्व का नाश है, अंत में मोक्षमार्ग का अन्वेषण है, काम का नाश है तथा पापों से पूर्ण विरति उपदेश है, वही धर्म समस्त प्राणियों का हितकर्त्ता है अत: वह श्रेष्ठ कैसे नहीं है ? मैं भी उस धर्म की पूजा करता हूँ। ॥१॥१३॥

अरहंत- शरण

॥०१॥१४॥

जीवाजीवद्विविधशरणान्वेषणे स्थैर्यभंगं
ज्ञात्वा त्यक्त्वाऽन्यतरशरणं नश्वरं मद्विधानां ।
इंद्रादीनामितिपरिचयादात्मरत्नोपलब्धि–
मिष्टै: प्राप्तुं निचितमनसा पूज्यतेऽर्हन् शरण्य: ।।

ॐ ह्रीं अर्हच्छरणेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જીવ અને અજીવરૂપ બંન્ને પ્રકારના શરણને સમજતાં, મારા માટે ઈન્દ્ર આદિનું શરણ પણ નશ્વર હોવાથી અન્ય સર્વે શરણને નશ્વર જાણીને તેમને છોડું છું. આ પ્રકારના પરિચયથી આત્મરત્નની ઉપલબ્ધિ થાય છે એટલે ઈષ્ટની પ્રાપ્તિ માટે દ્રઢ મનથી હું અરિહંત શરણની પૂજા કરું છું. ।।૧।।૧૪।।

भावार्थ :– जीव और अजीव रूप दोनों प्रकार की शरण का अन्वेषण अन्यतर शरण को नश्वर जानकर एवं उन्हें छोड़कर मुझ जैसे के लिए अन्य इन्द्र आदि की शरण भी नश्वर है । इस प्रकार के परिचय से आत्मरत्न की उपलब्धि होती है अत: इष्ट की प्राप्ति के लिए दृढ़ मन से मैं अर्हंत शरण की पूजा करता हूँ। ॥१॥१४॥

सिद्ध - शरण

॥०१॥१५॥

यावद्देहे स्थितिरुपचय: कर्मणामास्रवेण
तावत्सौख्यं कुत उपलभेऽतस्ततस्त्रोटनेच्छु: ।
एतत्कृत्यं न भवति विना सिद्धभक्तिं यतो मे
पूर्णार्घोघप्रयजनविधावाश्रितोऽहं शरण्यम् ।।

ॐ ह्रीं सिद्धशरणायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જ્યાં સુધી આત્મા દેહમાં સ્થિત છે, આસ્રવ દ્વારા કર્મોનું આગમન છે, ત્યાં સુધી હું સુખી કઈ રીતે થઈ શકું? હું આ કર્મ પરંપરાને તોડવા ઇચ્છું છું. પરંતુ આ કાર્ય સિદ્ધભક્તિ વિના સંભવ નથી. તેથી સમસ્ત કર્મો ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવાની પ્રક્રિયામાં મેં સિદ્ધોનું શરણ પ્રાપ્ત કરેલ છે. ।।૧।।૧૫।।

भावार्थ :– जब तक आत्मा देह में स्थित है आस्रव द्वारा कर्मों का आगमन है तब तक मैं सुखी कैसे हो सकता हूँ ? मैं इस कर्म परम्परा को तोड़ना चाहता हूँ। किन्तु यह कार्य सिद्धभक्ति के बिना संभव नहीं है अत: समस्त कर्मों पर विजय प्राप्त करने की प्रक्रिया में मैं सिद्धों की शरण को प्राप्त हुआ हूँ। ॥१॥१५॥

साधू - शरण

॥०१॥१६॥

रागद्वेषव्यपगमनतो निःस्पृहा धीरवीराः
संसाराब्धौ विषमगहने मज्जतां निर्निमित्तं ।
दत्त्वा धर्मोद्धरणतरणिं पारयंतो मुनीशा-
स्तानर्घेण स्थिरगुणधिया प्रांचयामि त्रिगुप्त्या ।

ॐ ह्रीं साधुशरणेभ्योऽर्घम्

ભાવાર્થ :– રાગ - દ્વેષના અભાવના કારણે જે નિસ્પૃહ અને ધીર-વીર છે તથા વિષમ અને ઊંડા સંસારરૂપી સમુદ્રમાં ડૂબતાં પ્રાણીઓને નિસ્પૃહભાવથી ધર્મરૂપી શ્રેષ્ઠ જહાજનું અવલંબન આપીને પાર ઉતારનારા મુનિઓની હું ધીર-ગુણરૂપ બુદ્ધિથી ત્રિગુપ્તિપૂર્વક પૂજા કરું છું. ।।૧।।૧૬।।

भावार्थ :– राग-द्वेष के अभाव से जो निष्पृह व धीर-वीर हैं, तथा विषम और गहरे संसाररूपी समुद्र में डूबनेवाले प्राणियों को निष्पृह भाव से धर्मरूपी श्रेष्ठ जहाज का अवलम्बन देकर पार करनेवाले मुनियों की मैं स्थिर गुणरूप बुद्धि से त्रिगुप्तिपूर्वक पूजा करता हूँ। ॥१॥१६॥

धर्म- शरण

॥०१॥१७॥

मित्रं सम्यक् परभवयथाचक्रमे सार्थदायि
नान्यो धर्माद्-दुरितदहनप्लोषणेंऽबुप्रवाह: ।
जानंतं मां समदृशिधियां संनिधानाच्छरण्य
त्रायस्व त्वं त्वयि धृतिगतिं पूजनार्घेण युक्तं ।।

ॐ ह्रीं धर्मशरणायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– પરભવમાં સાથે ચાલવા માટે ધર્મ સારો મિત્ર અને સાથ દેવાવાળો છે. એના સિવાય અન્ય કોઈ પાપરૂપી દાવાનળને શાંત કરવા માટે જળ પ્રવાહ નથી તથા રત્નત્રયવાળાઓને શરણભૂત અને પૂજનના અર્ધ્યથી યુક્ત, હે ધર્મ! મારી રક્ષા કરો! ।।૧।।૧૭।।

भावार्थ :– धर्म परभव में साथ चलने के लिए अच्छा मित्र एवं साथ देने वाला है, इसके अलावा अन्य कोई पापरूपी दावानल को शान्त करने के लिए जल प्रवाह नहीं है तथा रत्नत्रय वालों की शरण भूत एवं पूजन के अर्घ से युक्त हे धर्म! मेरी रक्षा करो। ॥१॥१७॥

सामूहिक अर्घ

॥०१॥१८॥

सर्वनितान् तत्त्वचंद्रप्रमाणान्-
जापध्यानस्तोत्रमंत्रैरुदर्च्य ।
द्रव्यक्षेत्रस्फूर्तिसज्जावकाशं,
नत्वार्घेण प्रांशुना संस्मरामि ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिप्रभृतिधर्मशरणांतप्रथमवलयस्थितसप्तदश जिनाधीश यज्ञदेवताभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- અરિહંત, સિદ્ધ આદિ પાંચ, ચાર મંગલ, ચાર ઉત્તમ, ચાર શરણરૂપ આ સત્તર મંત્રોની જપ, ધ્યાન, સ્તોત્ર મંત્રોથી પૂજા કરીને; દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ અનુસાર નમસ્કાર કરીને, મહા અર્ઘથી સ્મરણ-પૂજન કરું છું. ।।૧।।૧૮।।

भावार्थ :- उन सत्रह मंत्रों का जो अर्हंत् मंगल, उत्तम, शरण रूप हैं जप ध्यान स्तोत्र मंत्रों से पूजा कर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार नमस्कार करके विस्तीर्ण अर्घ से स्मरण करता हूँ। ॥१॥१८॥

द्वितीय वलय परिचय

<u>वलय में अर्घ्य की संख्या</u> : २५ (भूतकाल के २४ तीर्थंकर के २४ अर्घ्य और १ समुच्च्य अर्घ्य)

<u>वलय का विषय एवं संक्षिप्त परिचय :</u> इस वलय में भरतक्षेत्र के भूतकाल के २४ तीर्थंकर भगवंतों की पूजन की है। भूतकाल के श्री निर्वाण से लेकर श्री अनन्तवीर्य तीर्थंकर तक जो सर्वज्ञ और वीतरागी भगवान हुए है, उन प्रत्येक तीर्थंकर को अर्घ्य समर्पित किया गया है।

<u>वलय एवं अर्घ्य का दृशिकरण :</u> श्री आदिनाथ भगवान के निर्वाण के बाद भरत चक्रवर्ती ने ९ निधि मैं से नैसर्प निधि से कैलाश पर्वत पर ७२ जिनालय की रचना की थी। यहाँ पर हमने कैलाश पर्वत और तीन चौबीसी के ७२ जिनालय का दिव्य दृशीकरण देवों द्वारा रचित दर्शाने की काल्पनिक भावनात्मक कोशिश की है। इन प्रत्येक जिनालयों में सोनगढ़ के अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के पवित्र करकमल से प्रतिष्ठित एवं उनके प्रभावना योग मैं स्थापित जिन प्रतिमाओं को दर्शाया गया है।

निर्वाण जी

॥०२॥०१॥

निर्वाणदेवं श्रितभव्यलोकं निर्वाणदातारमनंतसौख्यं ।
संपूजयेऽहं मखसिद्धिहेतोरधीश्वरं प्राथमिकं जिनेंद्रं ।।

ॐ ह्रीं निर्वाणजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– હું યજ્ઞની સિદ્ધિ માટે આશ્રિત ભવ્ય લોકને નિર્વાણના દાતા અને અનંત સુખના ઈશ્વર, પ્રથમ નિર્વાણદેવ જિનેન્દ્રની પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૦૧॥

भावार्थ :– मैं यज्ञ की सिद्धि के लिए, आश्रित भव्य लोक को निर्वाण के दाता और अनंत सुख के ईश्वर प्रथम निर्वाणदेव जिनेन्द्र की पूजा करता हूँ। ॥०२॥०१॥

सागर जी

॥०२॥०२॥

श्रीसागरं वीतममत्वरागद्वेषं कृताशेषजनप्रसादं ।
समर्चये नीरचरुप्रदीपैदरुद्दीपिताशेषपदार्थमालं ।।

ॐ ह्रीं सागरजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમને મમત્વ તથા રાગ-દ્વેષનો અભાવ થઈ ગયો છે, જેમણે બધા પ્રાણીઓ ઉપર પ્રસન્નતા કરી છે, સમસ્ત પદાર્થોને જાણવાવાળા શ્રીમાન સાગર જિનેન્દ્રની હું જળ, ચંદન, નૈવેદ્ય, દીપક આદિથી પૂજા કરું છું.॥૦૨॥૦૨॥

भावार्थ :– जिनके ममत्व तथा राग-द्वेष का अभाव हो गया है, जिन्होंने सब प्राणियों पर प्रसन्नता की है, समस्त पदार्थों को जाननेवाले श्रीमान् सागर जिनेन्द्र की मैं जल, चंदन, नैवेद्य, दीपक आदि से पूजा करता हूँ। ॥०२॥०२॥

महासाधु जी

॥०२॥०३॥

श्रीमन्महासाधुजिनं प्रमाणनयप्रमाणीकृतजीवतत्त्वं ।
स्याद्वादभंगप्रणिधानहेतुं समर्चये यज्ञविधानसिद्धये ।।

ॐ ह्रीं महासाधुजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– પ્રમાણ તથા નયોથી જેમણે જીવ તત્ત્વને નિશ્ચિત કર્યું છે તથા સ્યાદ્વાદભંગના પ્રણયનના કારણભૂત શ્રીમાન મહાસાધુ જિનેન્દ્રની હું યજ્ઞવિધાનની સિદ્ધિ માટે પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૦૩॥

भावार्थ :– प्रमाण तथा नयों से जिन्होंने जीवतत्त्व को निश्चित किया है तथा स्याद्वाद भंग के प्रणयन के कारणभूत श्रीमान् महासाधु जिनेन्द्र की मैं यज्ञ विधान की सिद्धि के लिए पूजा करता हूँ। ॥०२॥०३॥

विमलप्रभ जी

॥०२॥०४॥

यस्यातिसाज्ज्ञानविशालदीपे प्रभासमानं जगदल्पसारं ।
विलोक्यते सर्षपवत् कराग्रे समर्चयेऽहं विमलप्रभाख्यं ॥

ॐ ह्रीं विमलप्रभायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમની સમીચીન જ્ઞાનમય વિશાળ દીપકમાં આ અલ્પસારવાળું જગત હાથના અગ્ર ભાગમાં સરસોના દાણા જેવડું જણાય છે એવા વિમલપ્રભ જિનેન્દ્રદેવની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૦૪॥

भावार्थ :– जिनके समीचीन ज्ञानमय विशाल दीपक में यह अल्प सारवाला जगत हाथ के अग्रभाग में सरसों की तरह भासमान होता है, उन विमलप्रभ जिनेन्द्र की मैं पूजा करता हूँ। ॥०२॥०४॥

शुद्धाभदेव जी

॥०२॥०५॥

समाश्रितानां मनसो विशुद्धयै कृतावतारं मुनिगीतकीर्तिं।
प्रणम्य यज्ञेऽहमुदंचयामि शुद्धाभदेवं चरुभिः प्रदीपैः ।।

ॐ ह्रीं शुद्धाभदेवायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– આશ્રિત ભવ્યોના મનની વિશુદ્ધિ માટે જેમણે અવતાર લીધો છે તથા મુનિઓ દ્વારા જેમની કીર્તિ ગાવામાં આવી છે એવા શુદ્ધાભદેવની હું નૈવેદ્ય તથા દીપકથી નમસ્કાર પૂર્વક પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૦૫॥

भावार्थ :– आश्रित भव्यों के मन की विशुद्धि के लिए जिन्होंने अवतार लिया है तथा मुनियों के द्वारा जिनकी कीर्ति गायी गयी है ऐसे शुद्धाभदेव की मैं नैवेद्य तथा दीपकादि से नमस्कार पूर्वक पूजा करता हूँ। ॥०२॥०५॥

श्रीधर जी

॥०२॥०६॥

लक्ष्मीद्वयं बाह्यगतांतरंगभेदात् पदाग्रे विलुलोठ यस्य ।
यस्मात् सदा श्रीधरकीर्तिमापत्तमर्चयेदाश्रितभव्यसार्थं ॥

ॐ ह्रीं श्रीधरायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- જેમના ચરણોમાં અંતરંગ બહિરંગ લક્ષ્મીનો નિવાસ હોવાથી જેમને શ્રીધર નામ પ્રાપ્ત થયું છે તથા ભવ્યોએ જેમનો આશ્રય લીધો છે એવા શ્રીધરદેવની હું પૂજા કરુ છું. ॥૦૨॥૦૬॥

भावार्थ :- जिनके चरणों में अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी निवास होने से जिन्हें श्रीधर नाम प्राप्त हुआ है, भव्यों ने जिनका आश्रय लिया है ऐसे श्रीधरदेव की मैं पूजा करता हूँ। ॥०२॥०६॥

श्रीदत्त जी

॥०२॥०७॥

श्रियं ददातीह सुभक्तिभाजां वृंदाय यस्मादिह नामजातं ।
श्रीदत्तदेवं भवभीतिमुक्त्यै यजामि नित्याद्भुतधामलक्ष्म्यै ।।

ॐ ह्रीं श्रीदत्त जिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સંસારમાં સમીચીન ભક્તિથી ભજન કરનારને જેઓ શ્રી ભાવાર્થાત્ આત્મલક્ષ્મી આપે છે, તેથી તેમનું નામ શ્રીદત્ત સાર્થક થયું છે તેથી હું સંસારના ભયની નિવૃત્તિ માટે તથા નિત્ય અદભુત મોક્ષલક્ષ્મીના ધામની પ્રાપ્તિ માટે શ્રીદત્ત જિનની પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૦૭॥

भावार्थ :– संसार में समीचीन भक्ति से भजने वालों के लिए जो श्री अर्थात् आत्म (आत्मलक्ष्मी) लक्ष्मी को देते हैं इसलिए उनका श्रीदत्त नाम सार्थक हुआ है, अत: मैं संसार के भय की निवृत्ति के लिए तथा नित्य अदभुत मोक्षलक्ष्मी के धाम की प्राप्ति के लिए, श्रीदत्तजिन की पूजा करता हूँ। ॥०२॥०७॥

सिद्धाभदेव जी

॥०२॥०८॥

सिद्धाप्रभांगस्य विसर्पिणी तन्मध्येजनुः सप्तकदर्शनेन ।
सम्यग्विशुद्धिर्मनसो यतस्त्वां सिद्धाभ ! यज्ञेऽर्चयितुं समीहे ।।

ॐ ह्रीं सिद्धाभजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના આભામંડળની વિસ્તીર્ણ પ્રભામાં પ્રાણીઓના સાત ભવ દેખાવાથી મનની સમ્યક્ વિશુદ્ધિ થાય છે એવા સિદ્ધાભદેવ જિનની પૂજાની ઇચ્છા કરું છું. ॥૦૨॥૦૮॥

भावार्थ :– जिनके आभामण्डल की विस्तीर्ण प्रभा में प्राणियों के सात भव दिखने से मन की सम्यक् विशुद्धि होती है मैं ऐसे सिद्धाभदेवजिन की पूजा की इच्छा करता हूँ। ॥०२॥०८॥

अमलप्रभ जी

॥०२॥०९॥

प्रभामति: शक्तिरनेकधा हि सद्ध्यानलक्ष्म्या यत उत्तमार्थै: ।
संगीयते त्वं ह्यमलां विभर्षि यतोऽर्चये त्वाममलप्रभाख्यं ।।

ॐ ह्रीं अमलप्रभजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– પ્રભા, બુદ્ધિ, શક્તિ આદિ સદ્-ધ્યાનરૂપી લક્ષ્મીના અનેક નામ છે. તેથી મોક્ષની કામના રાખનારા ઉત્તમ પુરુષો દ્વારા શુક્લધ્યાનને પ્રાપ્ત આપના ગુણોનું ગાન કરવામાં આવે છે, તેથી નિર્મળપ્રભાના ધારક અમલપ્રભદેવની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૦૯॥

भावार्थ :– प्रभा, बुद्धि, शक्ति इत्यादि सद्-ध्यानरूपी लक्ष्मी के अनेक नाम हैं इसलिए मोक्ष की कामना रखनेवाले उत्तम पुरुषों के द्वारा शुक्लध्यान को प्राप्त आपके गुणों को गान किया जाता है अत: निर्मल प्रभा के धारक अमलप्रभदेव की मैं पूजा करता हूँ। ॥०२॥०९॥

उद्धार जी

॥०२॥१०॥

अनेकसंसारगतं भ्रमेभ्य उद्धारकर्तेति बुधैरवादि ।
यतो मम भ्रांतिमपाकुरु त्वमुद्धारदेव प्रयजे भवंतं ।।

ॐ ह्रीं उद्धारजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જ્ઞાનીજનોએ કહ્યું કે સંસારના ભ્રમને પ્રાપ્ત અનેક પ્રાણીઓના આપ ઉદ્ધારકર્તા છો તેથી હે ઉદ્ધારજિન! આપ મારી પણ ભ્રાંતિ દૂર કરો. હું આપની ભક્તિભાવથી પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૧૦॥

भावार्थ :– ज्ञानीजनों ने कहा कि आप संसार के भ्रम को प्राप्त अनेक प्राणियों के उद्धार कर्ता हैं इसलिए हे उद्धारजिन ! आप मेरी भी भ्रान्ति दूर करो, मैं आपकी भक्तिभाव से पूजा करता हूँ। ॥०२॥१०॥

अग्निदेव जी

॥०२॥११॥

दुष्टाष्टकर्मेंधनदाहकर्ता यतोऽग्निनामाभ्युदितं यथार्थम् ।
ततो ममासाततृणव्रजेऽपि तिष्ठार्चये त्वां किमु पौनरुक्ते ॥

ॐ ह्रीं अग्निदेवजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– હે ભગવાન! દુષ્ટ અષ્ટ કર્મરૂપ ઇંધનને બાળવા માટે આપ અગ્નિ સમાન હોવાથી અગ્નિદેવ નામ સાર્થક છે, આપ મારા અશાતાકર્મરૂપી તૃણના સમૂહમાં અગ્નિ બનીને બિરાજો. આપ સર્વજ્ઞ હોવાથી વારંવાર કહેવાની આવશ્યકતા નથી. હું આપની પૂજા કરું છું.॥૦૨॥૧૧॥

भावार्थ :– हे भगवन् ! आप दुष्ट आठ कर्मरूप ईंधन को जलाने के लिए; अग्नि के समान हो इसलिए अग्निदेव नाम सार्थक है, आप मेरे असाता कर्मरूपी तृण के समूह में अग्नि बनकर बैठो। आप सर्वज्ञ हैं इसलिए बार-बार कहने की आवश्यकता नहीं है मैं आपकी पूजा करता हूँ। ॥०२॥११॥

संयम जी

॥०२॥१२॥

प्राणेंद्रियद्वैधसुसंयमस्य दातारमुच्चैः कथयामि सार्व ।
मद्दत्तमर्घं जिन संगृहाण सुसंयमं स्वीयगुणं प्रदेहि ।।

ॐ ह्रीं संयमजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– હે બધાનું હિત કરનાર હે જિન! પ્રાણીસંયમ અને ઇન્દ્રિયસંયમના ભેદથી બે પ્રકારનું સંયમ મને પ્રદાન કરો. હું આપને વિનયપૂર્વક નિવેદન કરું છું. આપ મારા દ્વારા સમર્પિત અર્ધ્યને ગ્રહણ કરો અને આપના ઉત્કૃષ્ટ સંયમરૂપી ગુણ મને પ્રદાન કરો. ॥૦૨॥૧૩॥

भावार्थ :– हे सबका हित करने वाले जिन ! प्राणी संयम और इन्द्रिय संयम के भेद से दो प्रकार का संयम मुझे प्रदान करो, मैं आपसे विनयपूर्वक निवेदन करता हूँ। आप मेरे द्वारा समर्पित अर्घ को ग्रहण करो और अपने उत्कृष्ट संयमरूपी गुण मुझे प्रदान करो। ॥०२॥१२॥

शिव जी

॥०२॥१३॥

स्वयं शिवः शाश्वतसौख्यदायी
स्वायंप्रभुः स्वात्मगुणप्रपन्नः।
तस्मात्तदर्थप्रतिपन्नकाम
स्त्वामर्चये प्रांजलिना नतोऽस्मि ।।

ॐ ह्रीं शिवजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- હે ભગવાન! આપ શિવરૂપ છો, શાશ્વત સુખ આપનાર છો, આપ સ્વયં પ્રભુ છો, કારણ કે આત્મગુણોને પ્રાપ્ત છો. તેથી મોક્ષસુખ અને આત્મગુણોની પ્રાપ્તિ માટે હું હાથ જોડીને નમસ્કાર કરીને આપની પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૧૪॥

भावार्थ :- हे भगवन् ! आप शिवरूप हैं, शाश्वत सुख को देने वाले हैं, आप स्वयं प्रभु हैं क्योंकि आत्मगुणों को प्राप्त हैं इसलिए मोक्षसुख एवं आत्म गुणों की प्राप्ति के लिए मैं हाथ जोड़कर नमस्कार करके आपकी पूजा करता हूँ। ॥०२॥१३॥

पुष्पांजलि जी

॥०२॥१४॥

सत्कुंदमल्ली-जलजादिपुष्पै
रभ्यर्च्यमान: श्रियमादधाति ।
नाम्नाऽप्यसौ तादृश एव यस्मात्
पुष्पांजलिं त्वां प्रतिपूजयामि ।।

ॐ ह्रीं पुष्पांजलिजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– હે ભગવાન! કુંદ, માલતી, કમળ આદિ પુષ્પોથી પૂજા કરવાથી આપ લક્ષ્મી આપો છો તેમજ યથાનામ તથા ગુણ છો તેથી પુષ્પાંજલિથી હું આપની પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૧૪॥

भावार्थ :– हे भगवन ! कुन्द, मालती, कमल आदि के पुष्पों से पूजा करने से आप लक्ष्मी को देते हैं, तथा यथानाम तथा गुण हैं, इसलिए पुष्पांजलि से मैं आपकी पूजा करता हूँ। ॥०२॥१४॥

उत्साह जी

॥०२॥१५॥

उत्साहयन् ज्ञानधनेश्वराणां,
शाम्याम्बुधिं संयमचंद्रकीर्तेः ।
उत्साहनाथो यजनोत्सवेऽस्मिन्,
संपूजितो मे स्वगुणं ददातु ।।

ॐ ह्रीं उत्साहजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જ્ઞાનધનના સ્વામી, સંયમરૂપી ચંદ્રમાની કીર્તિથી સામ્યભાવરૂપી સમુદ્રને વધારનારા હે ઉત્સાહ જિન! હું આપના આ યજ્ઞોત્સવમાં પૂજા કરું છું. આપ મને આપના ગુણ પ્રદાન કરો. ॥૦૨॥૧૫॥

भावार्थ :– ज्ञान धन के स्वामी संयमरूपी चन्द्रमा की कीर्ति से साम्यभाव रूपी समुद्र को बढ़ाने वाले, हे उत्साह जिन ! मैं आपकी इस यज्ञ उत्सव में पूजा करता हूँ। आप मुझे अपने गुण प्रदान करो। ॥०२॥१५॥

परमेश्वर जी

॥०२॥१६॥

नमोऽस्तु नित्यं परमेश्वराय कृपा यदीया क्षणसंनिधानात्।
करोति चिंतामणिरीप्सितार्थमिवांचये तं परमेश्वराख्यं ।।

ॐ ह्रीं परमेश्वरजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- હે પરમેશ્વર! આપને નિત્ય નમસ્કાર હો. આપની કૃપા ક્ષણભરમાં ચિંતામણિ સમાન મનોરથોને પૂર્ણ કરનારી છે. તેથી હે પરમેશ્વર જિનેન્દ્ર! હું આપની પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૧૬॥

भावार्थ :- हे परमेश्वर ! आपको नित्य नमस्कार हो, आपकी कृपा क्षणभर में चिंतामणि के समान मनोरथों को पूर्ण करने वाली है अत: हे परमेश्वर जिनेन्द्र ! मैं आपकी पूजा करता हूँ। ॥०२॥१६॥

ज्ञानेश्वर जी

॥०२॥१७॥

यज्ज्ञानरत्नाकरमध्यवर्ति जगत्त्रयं बिंदुसमं विभाति ।
तं ज्ञानसम्राज्यपतिं जिनेंद्रं ज्ञानेश्वरं संप्रति पूजयामि ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानेश्वरजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના જ્ઞાનરૂપ સમુદ્રમાં ત્રણલોક બિંદુ સમાન શોભિત થાય છે એવા જ્ઞાનરૂપ સામ્રાજ્યના સ્વામી જ્ઞાનેશ્વર ભગવાનને વર્તમાનમાં પૂજું છું. ॥૦૨॥૧૭॥

भावार्थ :– जिनके ज्ञानरूप समुद्र में तीन लोक बिंदु के समान शोभित होता है ऐसे ज्ञानरूप साम्राज्य के स्वामी ज्ञानेश्वर भगवान को वर्तमान में पूजता हूँ। ॥०२॥१७॥

विमलेश्वर जी

॥०२॥१८॥

तपोवृहद्धानुसमूहतापकृतात्मनैर्मल्यमनिर्मलानाम् ।
अस्मादृशां तद्गुणमाददानं संपूजयामो विमलेश्वरं तं ।।

ॐ ह्रीं विमलेश्वर जिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત તપરૂપી અગ્નિના તાપથી આત્માને નિર્મળ કરનારા અને મારા જેવા (વિકારી) ને નિર્મળતા પ્રદાન કરનારા વિમલ જિનેશ્વરની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૧૮॥

भावार्थ :– बढ़े हुए तपरूपी अग्नि के ताप से आत्मा को निर्मल करनेवाले एवं मुझ जैसे (विकारी) को निर्मलता प्रदान करनेवाले विमलेश्वरजिन की मैं पूजा करता हूँ। ॥०२॥१८॥

यशोधर जी

॥०२॥१९॥

यश:प्रसारे सति यस्य विश्वं सुधामयं चंद्रकलावदातं।
अनेकरूपं विकृतैकरूपं जातं समर्चे हि यशोधरेशं ॥

ॐ ह्रीं यशोधर जिनेशायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના ઉજ્જવળ યશના ફેલાવમાં સમસ્ત જગત અમૃતમય અને ચંદ્રમાની કળાઓ સમાન ઉજ્જવળ તથા અનેકરૂપ થઈને પણ સુકૃતરૂપ થઈ ગયા એવા યશોધરદેવની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૧૯॥

भावार्थ :– जिनके उज्ज्वल यश के फैलाव में सारा जगत अमृतमय एवं चन्द्रमा की कलाओं के समान उज्ज्वल तथा अनेक रूप होकर भी सुकृत रूप हो गया उन यशोधरदेव की मैं पूजा करता हूँ। ॥०२॥१९॥

कृष्णमति जी

॥०२॥२०॥

क्रोधस्मराशातविघातनाय संजाततीव्रक्रुधिवात्मनाम ।
प्राप्तं तु कृष्णोति नु शुद्धियोगात् तं कृष्णमर्चे शुचिताप्रपन्नं ।।

ॐ ह्रीं कृष्णमतये जिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કામ, ક્રોધની પીડાનો નાશ કરવા માટે જેમના આત્મામાં સમીચીન ક્રોધ ઉત્પન્ન થયો હોવાથી કૃષ્ણ નામ જેમને પ્રાપ્ત છે, શુદ્ધિના યોગથી જે નિર્મળતાને પ્રાપ્ત છે એવા કૃષ્ણમતિ જિનદેવની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૨૦॥

भावार्थ :– काम, क्रोध की पीड़ा को नाश करने के लिए जिनकी आत्मा में समीचीन क्रोध उत्पन्न हुआ है इसलिए कृष्ण नाम जिन्हें प्राप्त है, शुद्धि के योग से जो शुचिता को प्राप्त हैं, उन कृष्णमति जिनदेव की मैं पूजा करता हूँ। ॥०२॥२०॥

ज्ञानमति जी

॥०२॥२१॥

ज्ञानं मतिर्भाव उपाश्रयादिरेकार्थ एव प्रणिधानयोगात् ।
ज्ञाने मतिर्यस्य समासजातेर्यथार्थनामानमहं यजामि ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानमतये जिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- જ્ઞાન, મતિ, ભાવ અને ઉપાશ્રય—આ બધા પ્રણિધાન ઉપયોગના યોગથી એકાર્થવાચી નામ છે. ભાવાર્થાત્ જ્ઞાનમાં છે મતિ જેમને એવો સમાસ કરવાથી જ્ઞાનમતિ કહેવાય છે, એવા સાર્થક નામવાળા જ્ઞાનમતિ જિનેન્દ્રની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૨૧॥

भावार्थ :- ज्ञान, मति, भाव और उपाश्रय ये सभी प्रणिधान उपयोग के योग से एकार्थ वाची नाम हैं । भावार्थात् ज्ञान में है मति जिसके वह समास करने से ज्ञानमति कहलाता है ऐसे सार्थक नामवाले ज्ञानमति जिनेन्द्र की मैं पूजा करता हूँ। ॥०२॥२१॥

शुद्धमति जी

॥०२॥२२॥

समस्यमानान्यपदार्थजातं धुरंधरं धर्मरथांगनेमिं ।
जिनेश्वरं शुद्धमतिं यजेत प्राप्नोति शुद्धां मतिमेव ना सः ।।

ॐ ह्रीं शुद्धमतये जिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સમસ્ત પદાર્થ સમૂહને જાણનારા અને ધર્મચક્રની ધુરાને ધારણ કરનારા શુદ્ધમતિ જિનની જે પૂજા કરે છે તે શુદ્ધમતિને જ પામે છે. માટે એવા શુદ્ધમતિ જિનની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૨૨॥

भावार्थ :– समस्त पदार्थ समूह को जानने वाले एवं धर्मचक्र की धुरा को धारण करने वाले शुद्धमतिजिन की जो पूजा करता है वह शुद्धमति को ही पाता है । ऐसे शुद्धमतिजिन की मैं पूजा करता हूँ। ॥०२॥२२॥

श्रीभद्र जी

॥०२॥२३॥

संसारलक्ष्म्या अतिनश्वराया जन्मर्क्षमुद्रामिव कुत्सयन्वा ।
भद्रा शिवश्रीरिति योगयुक्त्या श्रीभद्रमीशं रभसार्चयामि ।।

ॐ ह्रीं श्रीभद्रजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– અતિ વિનાશક સંસારલક્ષ્મીની જન્મ નક્ષત્રની મુદ્રા સમાન નિંદા કરતા થકા અને મોક્ષલક્ષ્મીની પ્રશંસા કરતા થકા યોગની યુક્તિથી સાર્થક નામવાળા શ્રીભદ્ર જિનેન્દ્રની હું શીઘ્ર પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥૨૩॥

भावार्थ :– अतिविनाशीक संसार लक्ष्मी की जन्मनक्षत्र की मुद्रा के समान निंदा करते हुए एवं मोक्षलक्ष्मी की प्रशंसा करते हुए योग की युक्ति से सार्थक नामवाले श्रीभद्र जिनेन्द्र की मैं शीघ्र ही पूजा करता हूँ। ॥०२॥२३॥

अनंतवीर्य जी

॥०२॥२४॥

अनंतवीर्यादिगुणप्रसन्नमात्मप्रभावानुभवैकगम्यं ।
अनंतवीर्यं जिनपं स्तवीमि यज्ञार्थभागैरुपलाल्यमानं ।।

ॐ ह्रीं अनन्तवीर्य जिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– અનંતવીર્ય આદિ ગુણ સંયુક્ત આત્માના પ્રભાવરૂપ અનુભવગમ્ય અને યજ્ઞ નિમિત્ત પૂજા પ્રાપ્ત અનંતવીર્ય જિનેન્દ્રની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૦૨॥૨૪॥

भावार्थ :– अनंतवीर्य आदि गुण संयुक्त आत्मा के प्रभाव रूप अनुभव के गम्य एवं यज्ञ निमित्त पूजा को प्राप्त अनन्त-वीर्य जिनेन्द्र की स्तुति करता हूँ। ॥०२॥२४॥

सामूहिक अर्घ

॥०२॥२५॥

पूर्वं विसर्पिण्यथ कालमध्ये संजातकल्याणपरंपराणां ।
संस्मृत्य सार्थं प्रगुणं जिनानां यज्ञेसमाहूँय यजे समस्तान् ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठामहोत्सवे यागमंडलेश्वरद्वितीय वलयोन्मुद्रितनिर्वाणाद्यनंतवीर्यान्तेभ्यो भूतजिनेभ्योऽर्घम् ।।

ભાવાર્થ :– આ રીતે આ પ્રતિષ્ઠા મહોત્સવમાં યાગ મંડળના દ્વિતીય વલયમાં સ્થાપિત ભૂતકાળના જિનેન્દ્રોને અર્ઘ્ય ચડાવવો જોઈએ. ॥૦૨॥૨૫॥

भावार्थ :– इस प्रकार इस प्रतिष्ठा महोत्सव में यागमण्डल के द्वितीय वलय में स्थापित भूतकाल के जिनेन्द्रों को अर्घ देना चाहिए। ॥०२॥२५॥

तृतीय वलय परिचय

<u>वलय में अर्घ्य की संख्या</u> : २५ (वर्तमान काल के २४ तीर्थंकर के २४ अर्घ्य और १ समुच्चय अर्घ्य)

<u>वलय का विषय एवं संक्षिप्त परिचय :</u> इस वलय में भरतक्षेत्र के वर्तमानकाल के २४ तीर्थंकर भगवंतों की पूजन की है। जिनके ५-५ कल्याणक से यह भरत भूमि पावन हुई है, ऐसे श्री आदिनाथ भगवान से लेकर श्री महावीर भगवान तक उन प्रत्येक तीर्थंकर को अर्घ्य समर्पित किया है।

<u>वलय एवं अर्घ्य का दृशिकरण :</u> श्री आदिनाथ भगवान के निर्वाण के बाद भरत चक्रवर्ती ने ९ निधि मैं से नैसर्प निधि से कैलाश पर्वत पर ७२ जिनालय की रचना की थी। यहाँ पर हमने कैलाश पर्वत और तीन चौबीसी के ७२ जिनालय का दिव्य दृशीकरण देवों द्वारा रचित दर्शाने की काल्पनिक भावनात्मक कोशिश की है। इन प्रत्येक जिनालयों में सोनगढ़ के अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के पवित्र करकमल से प्रतिष्ठित एवं उनके प्रभावना योग मैं स्थापित जिन प्रतिमाओं को दर्शाया गया है।

ऋषभनाथ जी

॥०३॥०१॥

मनुनाभिमहीधरजात्मभुवं मरुदेव्युदरावतरंतमहं ।
प्रणिपत्य शिरोभ्युदयाय यजे कृतमुख्यजिनं वृषभं वृषभं ।।

ॐ ह्रीं वृषभजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– મનુ નાભિરાયના પુત્ર અને મરુદેવી રાણીના ગર્ભમાં અવતાર લેનારા, યજ્ઞવિધાનમાં મુખ્ય તથા ધર્મથી શોભાયમાન શ્રી વૃષભનાથ ભગવાનની મસ્તક નમાવીને હું પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૦૧॥

भावार्थ :– मनु नाभिराजा के पुत्र और मरुदेवी रानी के गर्भ में अवतार लेने वाले यज्ञ विधान में मुख्य तथा धर्म से शोभायमान वृषभनाथ भगवान की मैं मस्तक झुकाकर पूजा करता हूँ। ॥०३॥०१॥

अजितनाथ जी

॥०३॥०२॥

जितशत्रुगृहं परिभूषयितुं व्यवहारदिशा तनुभूप्रभवं ।
नयनिश्चयत: स्वयमेवभुवमजितं जिनमर्चतु यज्ञधर ।।

ॐ ह्रीं अजितजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જિતશત્રુ રાજાના ઘરને શોભાયમાન કરવાના કારણે વ્યવહારનયથી પુત્ર અને નિશ્ચયનયથી સ્વયં ઉત્પન્ન થયા એવા યજ્ઞના કર્તા શ્રી અજિતનાથ ભગવાનની પૂજા કરો. ॥૦૩॥૦૨॥

भावार्थ :– जितशत्रु राजा के घर को भूषित करने के कारण व्यवहारनय से पुत्र एवं निश्चयनय से स्वयं उत्पन्न हुए, ऐसे यज्ञ के कर्ता अजितनाथ भगवान की पूजा करो। ॥०३॥०२॥

संभवनाथ जी

॥०३॥०३॥

दृढराजसुवंशनभोमिहिरं त्रिजगत्त्रयभूषणमभ्युदयं ।
जिनसंभवमूर्ध्वगतिप्रदमर्चनया प्रणमामि पुरस्कृतया ।।

ॐ ह्रीं संभवजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– દ્રઢરથ રાજાના વંશરૂપી આકાશમાં સૂર્ય સમાન અને ત્રણ જગતના ભૂષણ તથા વિભૂતિરૂપ ઉર્ધ્વગતિના દાયક એવા શ્રી સંભવનાથ ભગવાનને અર્ચનાપૂર્વક પ્રણામ કરુ છું. ॥०૩॥०૩॥

भावार्थ :– दृढरथ राजा के वंशरूपी आकाश में सूर्य समान और तीन जगत के भूषण तथा विभूतिरूप ऊर्ध्वगति के दायक, ऐसे संभवनाथ भगवान को अर्चना पूर्वक प्रणाम करते हैं। ॥०३॥०३॥

अभिनंदननाथ जी

॥०३॥०४॥

कपिकेतनमीश्वरमर्थयतो मृतिजन्मजरापदनोदयत: ।
भविकस्य महोत्सवसिद्धिमियादत एव यजे ह्यभिनंदनकं ।।

ॐ ह्रीं अभिनंदनजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– વાંદરાનું ચિહ્ન છે જેમને એવા ઈશ્વર, પ્રાર્થના કરનારાઓના જન્મ-જરા-મૃત્યુને દૂર કરનારા, જેમનાથી ભવ્યોને મહોત્સવની સિદ્ધિ થાય છે એવા શ્રી અભિનંદનસ્વામીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૦૪॥

भावार्थ :– बंदर का है चिह्न जिनका ऐसे ईश्वर, प्रार्थना करने वालों के जन्म, जरा, मृत्यु को दूर करनेवाले, जिनसे भव्यों के महोत्सव की सिद्धि होती है ऐसे अभिनंदनस्वामी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०३॥०४॥

सुमतिनाथ जी

॥०३॥०५॥

सुमतिं श्रितमर्त्यमतिप्रकरार्पणतोऽर्थकराख्यमवाप्तशिवं ।
महयामि पितामहमेतदधिजगतीत्रयमूर्जितभक्तिनुतः ।।

ॐ ह्रीं सुमतिनाथजिनेन्द्रायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– આશ્રિત પ્રાણીઓને બુદ્ધિનું પ્રકર્ષ પ્રદાન કરનારા તથા પ્રયોજનની સિદ્ધિ કરનારા ત્રણ જગતના પિતામહરૂપ શ્રી સુમતિનાથ ભગવાનની હું ભક્તિભાવથી પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૦૫॥

भावार्थ :– आश्रित प्राणियों को बुद्धि के प्रकर्ष को देने वाले, तथा प्रयोजन की सिद्धि करने वाले तीन जगत के पितामह रूप सुमतिनाथ भगवान की मैं भक्तिभाव से पूजा करता हूँ। ॥०३॥०५॥

पद्मप्रभ जी

॥०३॥०६॥

धरणेशभवं भवभावमितं जलजप्रभमीश्वरमानमताम् ।
सुरसंपदियर्त्ति न केति यजे चरुदीपफलैः सुरवासभवैः ।।

ॐ ह्रीं पद्मप्रभजिनेन्द्रायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ધરણેશ રાજાના પુત્ર સંસાર અભાવને પ્રાપ્ત રત્નકમળ ચિહ્નના ધારક એવા શ્રી પદ્મપ્રભ જિનેન્દ્રની પૂજા કરનારાને સ્વર્ગની સંપત્તિ કેમ નહીં મળે? આથી સ્વર્ગના ચરૂ, દીપ અને ફળ આદિથી હું પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૦૬॥

भावार्थ :– धरणेश राजा के पुत्र संसार अभाव को प्राप्त, रक्त कमल चिह्न के धारक ऐसे पद्मप्रभ जिनेन्द्र की पूजा करने वालों को स्वर्ग की सम्पत्ति क्यों नहीं मिलेगी ? अत: स्वर्ग के चरु दीप फलादि से मैं पूजा करता हूँ। ।॥०३॥०६॥

सुपार्श्वनाथ जी

॥०३॥०७॥

शुभपार्श्वजिनेश्वरपादभुवां रजसां श्रयत: कमलाततय: ।
कति नाम भवंति न यज्ञभुवि नयितुं महयामि महध्वनिभि: ।।

ॐ ह्रीं सुपार्श्वनाथजिनेन्द्रायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- શ્રી સુપાર્શ્વનાથ જિનેન્દ્રના ચરણોથી ઉત્પન્ન રજનો આશ્રય કરનારાઓને એવી કઈ લક્ષ્મી છે કે જેની પરંપરા પ્રાપ્તિ નથી થતી? આથી યજ્ઞભૂમિમાં ઉત્સવની પ્રાપ્તિ માટે હું તેમની પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૦૭॥

भावार्थ :- सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र के चरणों से उत्पन्न रज का आश्रय करने वालों को कौन सी लक्ष्मी की परम्परा प्राप्त नहीं होती है ? इसलिए यज्ञ भूमि में उत्सव की प्राप्ति के लिए मैं उनकी पूजा करता हूँ। ॥०३॥०७॥

चंद्रप्रभ जी

॥०३॥०८॥

मनसा परिचिंत्य विधुः स्वरसात् मम कांतिहृतिर्जिनदेहघृणेः।
इति पादभुवं श्रितवानिव तं जिनचंद्रपदांबुजमाश्रयत॥

ॐ ह्रीं चन्द्रप्रभजिनेन्द्रायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ચંદ્રએ વિચાર્યું કે મારા શરીરની કાંતિનું હરણ ભગવાન શ્રી ચંદ્રપ્રભના શરીરના કિરણોએ કર્યું હોવાથી તેણે ભગવાનના ચરણપીઠનો આશ્રય લઈ લીધો છે એવા શ્રી ચંદ્રપ્રભ જિનના ચરણારવિંદનો આશ્રય લઈને પૂજા કરો. ॥૦૩॥૦૮॥

भावार्थ :– चन्द्रमा ने सोचा की मेरे शरीर की कांति का हरण भगवान चन्द्रप्रभ के शरीर की किरणों ने किया है इसलिए उसने भगवान के चरणपीठ का आश्रय ले लिया, ऐसे चन्द्रप्रभजिन के चरणारविंद का आश्रय लेकर पूजा करो। ॥०३॥०८॥

पुष्पदंत जी

॥०३॥०९॥

सुमदंतजिनं नवमं सुविधीतिपराहमखंडमनंगहरं ।
शुचिदेहततिप्रसरं प्रणुतात् सलिलादिगणैर्यजतां विधिना ।।

ॐ ह्रीं पुष्पदंतजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ધવલદેહની કાંતિને ધારણ કરનારા નવમાં તીર્થંકર શ્રી પુષ્પદંત, અખંડ કામને હરનારા અપર નામ ધારક શ્રી સુવિધિ જિનેન્દ્રને નમસ્કાર કરો અને જલ આદિ દ્રવ્યોથી વિધિપૂર્વક પૂજા કરો. ॥૦૩॥૦૯॥

भावार्थ :– धवल देह की कांति को धारण करने वाले पुष्पदंत नवम तीर्थंकर अखंड काम को हरने वाले सुविधि अपर नाम के धारक जिनेन्द्र को नमस्कार करो एवं जलादि द्रव्यों से विधि पूर्वक पूजा करो। ॥०३॥०९॥

शीतलनाथ जी

॥०३॥१०॥

शीतं सुखं य इहं लाति सदा सुजीवान्
तं शीतलं प्रणिगदंति यतिश्वराद्या: ।
तं शीतल श्रयत भव्यजना हि भक्त्या
यस्याश्रयेण भवतीह ममापि सौख्यम् ।।

ॐ ह्रीं शीतलजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– દસમા (તીર્થંકર) શ્રી શીતલનાથ જિનની પૂજા કરનાર પ્રાણીઓને અતિ અધિક ધન - ધાન્યની સમૃદ્ધિ મળે છે એવા શ્રી શીતલનાથ ભગવાનના શરણે હું પણ જાઉં છું. કે જેથી મને પણ સુખની પ્રાપ્તિ થાય. ॥૦૩॥૧૦॥

भावार्थ :– दशवें शीतलनाथ जिन की पूजन करने वाले प्राणियों को अत्यधिक धनधान्य की समृद्धि होती है, उन शीतलनाथ भगवान की शरण को मैं भी प्राप्त होता हूँ। मुझे भी सुख की प्राप्ति हो। ॥०३॥१०॥

श्रेयांसनाथ जी

॥०३॥११॥

श्रेयोजिनस्य चरणौ परिधार्य चित्ते
संसारपंचतयदुर्भ्रमणव्यपायः ।
श्रेयोऽर्थिनां भवति तत्कृतये मयाऽपि
संपूज्यते यजनसद्विधिषु प्रशस्य ।।

ॐ ह्रीं श्रेयोजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– શ્રી શ્રેયાંસનાથ ભગવાનના ચરણોનો ચિત્તમાં વિચાર કરનારા કલ્યાણના ઇચ્છુકોના પાંચ પ્રકાર પરાવર્તનના દૂરભ્રમણનો નાશ થાય છે. તે કાર્ય માટે હું પણ યજ્ઞવિધિમાં તેઓની પ્રશંસા કરીને પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૧૧॥

भावार्थ :– श्रेयांसनाथ भगवान के चरणों का चित्त में विचार करने वाले कल्याण के इच्छुकों के पाँच प्रकार परावर्तन के दुर्भ्रमण का नाश होता है, उस कार्य के लिए मैं भी यज्ञविधि में प्रशंसा करके पूजा करता हूँ। ॥०३॥११॥

वासुपूज्य जी

॥०३॥१२॥

इक्ष्वाकुवंशतिलको वसुपूज्यराजा,
यज्जन्मजातकविधौ हरिणार्चितोऽभूत् ।
तद्वासुपूज्यजिनपार्चनया पुनीतः
स्यामद्य तत्प्रतिकृतिं चरुभिर्यजामि ।।

ॐ ह्रीं वासुपूज्यजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- જેમનો જન્મ થતાં જ ઈક્ષ્વાકુવંશના તિલક વસુપૂજ્ય રાજા ઈન્દ્ર દ્વારા પૂજ્ય થયા એવા શ્રી વાસુપૂજ્ય જિનની પૂજા કરીને હું પવિત્ર થયો એવો હું આજે તેમના બિંબની નૈવેદ્યથી પૂજા કરું છું.॥०३॥१२॥

भावार्थ :- जिनके जन्म होते ही इक्ष्वाकुवंश के तिलक वसुपूज्य राजा इन्द्र के द्वारा पूजित हुए, उन वासुपूज्य जिन की पूजा कर मैं पवित्र हुआ आज उनके बिंब की नैवेद्य से पूजा करता हूँ। ॥०३॥१२॥

विमलनाथ जी

॥०३॥१३॥

कांपिल्यनाथकृतवर्मगृहावतारं
श्यामाजयाहजननीसुखदं नमामि ।
कोलध्वजं विमलमीश्वरमध्वरेऽस्मि
न्नर्चे द्विरुक्तमलहापनकर्मसिद्धये ।।

ॐ ह्रीं विमलनाथजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કંપિલા નગરીના રાજા કૃતવર્માને ત્યાં અવતાર લેનારા અને શ્યામા માતાને સુખ દેનારા, શૂકરના ચિહ્નથી યુક્ત શ્રી વિમલ જિનેન્દ્રની, દ્રવ્ય અને ભાવ બંને પ્રકારના મળને દૂર કરવા માટે આ યજ્ઞમાં હું પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૧૩॥

भावार्थ :– कंपिला नगरी के राज कृतवर्मा के यहाँ अवतार लेने वाले एवं श्यामामाता को सुख देने वाले, शूकर के चिह्न से युक्त विमल जिनेन्द्र की इस यज्ञ में, द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के मलों को दूर करने के लिए मैं पूजा करता हूँ। ॥०३॥१३॥

अनंतनाथ जी

॥०३॥१४॥

साकेतनायकनृपस्य च सिंहसेन
नाम्नस्तनूजममरार्चितपादपद्मं ।
संपूजयामि विविधार्हणया ह्यनंत
नाथं चतुर्दशजिनं सलिलाक्षतौधैः ।।

ॐ ह्रीं अनंतजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– અયોધ્યા નગરીના સિંહસેન રાજાના પુત્ર અને દેવો દ્વારા જેમના ચરણકમળ પૂજિત છે એવા ચૌદમા શ્રી અનંતનાથ જિનની હું જળ, અક્ષત આદિથી વિવિધ પ્રકારે હું પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૧૪॥

भावार्थ :– अयोध्या नगरी के राजा सिंहसेन राजा के पुत्र और देवों के द्वारा जिनके चरण कमल पूजित हैं ऐसे चौदहवें अनन्तनाथ जिन की मैं जल, अक्षत आदि से नाना प्रकार से पूजा करता हूँ। ॥०३॥१४॥

धर्मनाथ जी

॥०३॥१५॥

धर्मं द्विधोपदिशता सद्सींद्रधार्ये
किं किं न नाम जनताहितमन्वदर्शि ।
श्रीधर्मनाथ ! भवतेति सदर्थनाम
संप्राप्तयेऽर्चनविधिं पुरतः करोमि ।।

ॐ ह्रीं धर्मनाथजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કુબેર રચિત સમવસરણ સભામાં મુનિ અને શ્રાવકના ભેદથી બે પ્રકારનો ઉપદેશ દેનારા હે શ્રી ધર્મનાથ ભગવાન! આપે પ્રાણીઓના હિત માટે શું શું નથી દેખાડ્યું? તેથી ધર્મની પ્રાપ્તિ માટે હું આપની સમક્ષ પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૧૫॥

भावार्थ :– कुबेर रचित समवसरण सभा में मुनि और श्रावक के भेद से दो प्रकार का उपदेश देने वाले हे धर्मनाथ भगवान ! आपने प्राणियों के हित के लिए क्या-क्या नहीं दिखलाया ? इसलिए धर्म की प्राप्ति के लिए मैं आपके सामने पूजा करता हूँ। ॥०३॥१५॥

शांतिनाथ जी

॥०३॥१६॥

श्रीहस्तिनागपुरपालकविश्वसेन:
स्वांके निवेश्य तनयामृतपुष्टितुष्ट:।
ऐराऽपि सा सुकुरुवंशनिधानभूमि
र्यस्माद् बभूव जिनशांतिमिहाश्रयामि ।।

ॐ ह्रीं शांतिजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– શ્રી હસ્તિનાપુરના સ્વામી રાજા વિશ્વસેને પોતાના ખોળામાં સ્થાપિત કરીને પુત્રને અમૃતથી પુષ્ટ કરી તુષ્ટ કર્યા. ઐરા નામની રાણી પણ જેમના નિમિત્તે કુરુવંશના નિધાનની ભૂમિ બની એવા શ્રી શાંતિનાથનું શરણ હું પ્રાપ્ત કરું છું. ॥૦૩॥૧૬॥

भावार्थ :– श्रीमान हस्तिनापुर के स्वामी राजा विश्वसेन ने अपनी गोद में स्थापित कर पुत्र को अमृत से पुष्ट कर तुष्ट किया। ऐरा नामक रानी भी जिनके निमित्त से कुरुवंश के निधान की भूमि हुयी, उन शांतिनाथ की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ। ॥०३॥१६॥

कुंथुनाथ जी

॥०३॥१७॥

श्रीकुंथुनाथजिनजन्मनि षण्णिकाय
जीवा: सुखं निरुपमं बुभुजुर्विशंकं ।
किं नाम तत्स्मृतिनिराकुलमानसोऽहं
भुंजे न सत्त्वरमतोऽर्चनमारभेय ।।

ॐ ह्रीं कुंथुनाथजिनायार्घम्

ભાવાર્થ :– જે શ્રીમાન કુંથુનાથ જિનેન્દ્રના જન્મથી છ કાયના બધા જ જીવ નિ:શંક સુખને પ્રાપ્ત થયા તો પછી તેમનું સ્મરણ કરીને નિરાકુળ ચિત્તવાળો હું સુખ કેમ ન ભોગવું ? ॥૦૩॥૧૭॥

भावार्थ :– जिन श्रीमान कुंथुनाथ जिनेन्द्र के जन्म में छह काय के सभी जीव नि:शंक सुख को प्राप्त हुए, तब उनका स्मरण कर निराकुल चित्तवाला मैं सुख क्यों नहीं भोगूँगा ? ॥०३॥१७॥

अरनाथ जी

॥०३॥१८॥

सद्दर्शनप्लुतसुदर्शनभूपपुत्रं
त्रैलोक्यजीववररक्षणहेतुमित्रम् ।
श्रीमित्रसेनजननीखनिरत्नमर्चे
श्रीपुष्पचिह्नमरनाथजिनेंद्रमर्थ्यम् ।।

ॐ ह्रीं अरनाथजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વથી, પવિત્ર સુદર્શન રાજાના પુત્ર અને ત્રણલોકના જીવોની રક્ષા માટે મિત્ર સ્વરૂપ તથા મિત્રસેના માતારૂપી ખાણના રત્નસ્વરૂપ, મત્સ્ય ચિહ્ન યુક્ત, પ્રાર્થનીય શ્રી અરનાથ જિનેન્દ્રની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૧૮॥

भावार्थ :– क्षायिक सम्यक्त्व से पवित्र सुदर्शन राजा के पुत्र और तीन लोक के जीवों की रक्षा के लिए मित्र स्वरूप तथा मित्रसेना माता रूपी खान के रत्नस्वरूप, मच्छ चिह्न युक्त प्रार्थनीय अरनाथ जिनेन्द्र की मैं पूजा करता हूँ। ॥०३॥१८॥

मल्लिनाथ जी

॥०३॥१९॥

कुंभोद्भवं धरणिदु:खहरं प्रजाव
त्यानंदकारकमतंद्रमुनींद्रसेव्यं ।
श्रीमल्लिनाथविभुमध्वरविघ्नशांत्यै
संपूजये जलसुचंदनपुष्पदीपैः ।।

ॐ ह्रीं मल्लिजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કુંભ રાજાથી ઉત્પન્ન, પૃથ્વીના દુઃખ દૂર કરનારા તથા પ્રજાવતી માતાના આનંદકર્તા અને નિરાલસ મુનિઓની સેવા પ્રાપ્ત એવા શ્રી મલ્લિનાથ જિનેન્દ્રની આ યજ્ઞના વિઘ્નોની શાંતિ માટે હું જળ, ચંદન, પુષ્પ, દીપ આદિથી પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૧૯॥

भावार्थ :– कुंभराजा से उत्पन्न, पृथ्वी के दुःख दूर करने वाले तथा प्रजावती माता के आनंदकर्त्ता और निरालस मुनियों से सेवा प्राप्त ऐसे मल्लिनाथ जिनेन्द्र की इस यज्ञ के विघ्नो की शांति के लिए मैं जल, चंदन, पुष्प, दीप आदि से पूजा करता हूँ। ॥०३॥१९॥

मुनिसुव्रतनाथ जी

॥०३॥२०॥

राजत्सुराजहरिवंशनभोविभास्वान्
वप्रांबिकाप्रियसुतो मुनिसुव्रताख्य: ।
संपूज्यते शिवपथप्रतिपत्यहेतु
र्यज्ञे मया विविधवस्तुभिरर्हणेऽस्मिन् ।।

ॐ ह्रीं मुनिसुव्रतनाथजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સુંદર છે રાજા જેમાં એવા હરિવંશરૂપ આકાશમાં સૂર્ય સમાન અને વપ્રા નામક માતાના પ્રિય પુત્ર, મોક્ષમાર્ગની પ્રાપ્તિમાં કારણ, શ્રી મુનિસુવ્રત જિનેન્દ્રની હું આ યજ્ઞમાં વિવિધ વસ્તુઓથી પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૨૦॥

भावार्थ :– सुन्दर है राजा जिसमें ऐसे हरिवंश रूप आकाश में सूर्य समान और वप्रा नामक माता के प्रिय पुत्र, मोक्षमार्ग की प्राप्ति में कारण ऐसे श्री मुनिसुव्रत जिनेन्द्र की मैं इस यज्ञ में विविध वस्तुओं से पूजा करता हूँ। ॥०३॥२०॥

नमिनाथ जी

॥०३॥२१॥

सन्मैथिलेशविजयाह्वगृहेऽवतीर्ण
कल्याणपंचकसमर्चितपादपद्मं।
धर्मंबुवाहपरिपोषितभव्यशस्यं
नित्यं नमिं जिनवरं महसार्चयामि ।।

ॐ ह्रीं नमिनाथजिनेन्द्रायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– મિથિલા નગરીના વિજય નામના રાજાના ગૃહમાં અવતીર્ણ થયા અને પંચકલ્યાણકથી પૂજિત ચરણકમળવાળા, ધર્મરૂપી મેઘથી ભવ્યજીવરૂપી ધાન્યને પુષ્ટ કરનારા એવા શ્રી નમિનાથ સ્વામીની હું નિત્ય ઉત્સાહથી પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૨૧॥

भावार्थ :– मिथिला नगरी के विजय नामक राजा के गृह में अवतीर्ण हुए एवं पंचकल्याणक से पूजित चरण कमल वाले धर्म रूपी मेघ से भव्य जीव रूपी धान्य को पुष्ट करने वाले ऐसे नमिनाथस्वामी की मैं नित्य उत्साह से पूजा करता हूँ। ॥०३॥२१॥

नेमिनाथ जी

॥०३॥२२॥

द्वारावतीपतिसमुद्रजयेशमान्यं
श्रीयादवेशबलकेशवपूजितांह्रिं ।
शंखांकमंबुधरमेचकदेहमर्चे
सद्ब्रह्मचारिमणिनेमिजिनं जलाद्यैः ।।

ॐ ह्रीं नेमिनाथजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– દ્વારાવતી નગરીના સ્વામી સમુદ્રવિજય રાજા દ્વારા માન્ય, શ્રીમાન યાદવ વંશના સ્વામી બળભદ્ર અને નારાયણથી પૂજિત છે ચરણ જેમના, શંખ ચિહ્ન યુક્ત મેઘ સમાન શ્યામ દેહ શરીરવાળા અને મહાન બ્રહ્મચારીઓમાં શિરોમણિ એવા શ્રી નેમિનાથ જિનેન્દ્રની હું જલ આદિ દ્રવ્યોથી પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૨૨॥

भावार्थ :– द्वारावती नगरी के स्वामी समुद्रविजय राजा के द्वारा मान्य श्रीमान यादववंश के स्वामी बलभद्र और नारायण से पूजित हैं चरण जिनके, शंख चिह्न युक्त, मेघ समान श्याम देह वाले, एवं महान ब्रह्मचारियों में शिरोमणि ऐसे श्री नेमिनाथजिनेन्द्र की मैं जलादि द्रव्यों से पूजा करता हूँ। ॥०३॥२२॥

पार्श्वनाथ जी

॥०३॥२३॥

काशीपुरीशनृपभूषणविश्वसेन
नेत्रप्रियं कमठ शाठ्यविखंडनेनं ।
पद्माहिराजविबुधव्रजपूजनांकं
वंदेऽर्चयामि शिरसा नतमौलिनीत: ।।

ॐ ह्रीं पार्श्वजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– વારાણસી નગરીના રાજાઓના આભૂષણ સ્વરૂપ, એવા વિશ્વસેન રાજાના નેત્રપ્રિય પુત્ર અને કમઠની શઠતાનું વિખંડન કરવાવાળા તથા પદ્માવતી અને ધરણેન્દ્ર આદિ દેવોથી પૂજનનું ચિહ્ન પ્રાપ્ત, એવા શ્રી પાર્શ્વનાથ જિનેન્દ્રની હું મસ્તક નમાવીને હું પૂજા નમસ્કાર કરું છું. ॥૦૩॥૨૩॥

भावार्थ :– वाराणसी के राजाओं के आभूषण स्वरूप ऐसे विश्वसेन राजा के नेत्रप्रिय पुत्र और कमठ की शठता का विखंडन करने वाले तथा पद्मावती और धरणेन्द्र आदि देवों से पूजन का चिह्न प्राप्त ऐसे पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की मैं मस्तक झुकाकर पूजा नमस्कार करता हूँ। ॥०३॥२३॥

॥०३॥२४॥

सिद्धार्थभूपतिगणेन पुरस्क्रियाया
मानंदतांडवविधौ स्वजनु: शशंसे ।
श्रीश्रेणिकेन सदसि ध्रुवभूपदाप्त्यै
यज्ञेऽर्चयामि वरवीरजिनेंद्रमस्मिन् ।।

ॐ ह्रीं वर्धमानजिनेन्द्रायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સિદ્ધાર્થ રાજાએ પોતાના સત્કારમાં આનંદ નામના તાંડવ નૃત્યથી પોતાનો જન્મ સાર્થક કર્યો અને રાજા શ્રેણિકે સમવસરણ સભામાં નિશ્ચળ પદની પ્રાપ્તિ માટે પૂજા કરી, હું પણ આ યજ્ઞમાં શ્રી વીર જિનેન્દ્રની પૂજા કરું છું. ॥૦૩॥૨૪॥

भावार्थ :– सिद्धार्थ राजा ने अपने सत्कार में आनंद तांडव नृत्य से अपना जन्म सार्थक किया और राजा श्रेणिक ने समवसरण सभा में निश्चल पद की प्राप्ति के लिए पूजा की, मैं भी इस यज्ञ में वीर जिनेन्द्र की पूजा करता हूँ। ॥०३॥२४॥

सामूहिक अर्घ

॥०३॥२५॥

अत्राहूँतसुपर्वपर्वनिकरे बिंबप्रतिष्ठोत्सवे
संपूज्याश्चतुरुत्तरा जिनवरा विंशप्रमाः संप्रति ।
संजाग्रत्समया दयैकसुकृतानुद्धार्य मोक्षं गता–
स्तेऽत्रागत्य समस्तमध्वरकृतं गृह्णंतु पूजाविधिं ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् यागमंडले यज्ञमुख्यार्चित तृतीय वलयोन्मुद्रित वर्तमान चतुर्विंशति जिनेभ्यः पूर्णार्घम् ।

ભાવાર્થ :– અહીં આહ્વાનન કરવામાં આવેલ દેવો દ્વારા આ બિંબપ્રતિષ્ઠા ઉત્સવમાં પૂજવામાં આવેલા વર્તમાન ચોવીસ તીર્થંકર જેમનો સમય પ્રગટ છે તથા જે દયાવાન પુરુષોનો ઉદ્ધાર કરીને મોક્ષને પ્રાપ્ત થયા છે, તેઓ બધા અહીં આવીને યજ્ઞકૃત સમસ્ત પૂજાની વિધિને ગ્રહણ કરે. ॥૦૩॥૨૫॥

भावार्थ :– यहाँ आह्वानन किये गये देवों द्वारा इस बिंबप्रतिष्ठा उत्सव में पूजे गये वर्तमान चौबीस तीर्थंकर जिनका समय प्रगट है तथा जो दयावान पुरुषों का उद्धार कर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं वे सभी यहाँ आकर यज्ञ कृत समस्त पूजा की विधि को ग्रहण करें। ॥०३॥२५॥

चतुर्थ वलय परिचय

वलय में अर्घ्य की संख्या : २५ (भविष्य काल के २४ तीर्थंकर के २४ अर्घ्य और १ समुच्च्य अर्घ्य)

वलय का विषय एवं संक्षिप्त परिचय : इस वलय में भरतक्षेत्र के भविष्यकाल के २४ तीर्थंकर भगवंतों की पूजन की है। भविष्यकाल के श्री महापद्म से लेकर श्री अनन्तवीर्य तीर्थंकर तक जिनकी दिव्यध्वनि की अविरल धारा में अनेक भव्य जीव चैतन्य रस का रसपान करेंगे, उन प्रत्येक तीर्थंकर को अर्घ्य समर्पित किया है।

वलय एवं अर्घ्य का दृशिकरण : श्री आदिनाथ भगवान के निर्वाण के बाद भरत चक्रवर्ती ने ९ निधि मैं से नैसर्प निधि से कैलाश पर्वत पर ७२ जिनालय की रचना की थी। यहाँ पर हमने कैलाश पर्वत और तीन चोबीसी के ७२ जिनालय का दिव्य दृशीकरण देवों द्वारा रचित दर्शाने की काल्पनिक भावनात्मक कोशीष की है। इन प्रत्येक जिनालयों में सोनगढ़ के अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के पवित्र करकमल से प्रतिष्ठित एवं उनके प्रभावना योग मैं स्थापित जिन प्रतिमाओं को दर्शाया गया है।

महापद्म जी

॥०४॥०१॥

पद्मा चलेत्यंकनलुप्तिकामा जिनस्य पादावचलौ विचार्य ।
यत्पादपद्मे वसतिं चकार सोऽयं महापद्मजिनोर्च्यतेऽर्घैः ॥

ॐ ह्रीं महापद्मजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– આ લક્ષ્મી ચંચળ છે, આ દોષથી મુક્ત થવાની ઈચ્છાથી લક્ષ્મીએ જિનેન્દ્ર ભગવાનના ચરણોને અચલ સમજીને ભગવાનના ચરણોમાં નિવાસ કર્યો છે એવા આ શ્રી મહાપદ્મ જિનેન્દ્રની આપણે અર્ઘ્યથી પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૪॥૦૧॥

भावार्थ :– यह लक्ष्मी चंचल है, इस दोष को लुप्त करने की इच्छा से जिनेन्द्र भगवान के चरणों को अचल विचार कर लक्ष्मी ने भगवान के चरणों में निवास किया है, ऐसे इन महापद्मजिनेन्द्र की हम अर्घों से पूजा करते हैं। ॥०४॥०१॥

सुरप्रभ जी

॥०४॥०२॥

देवाश्चतुर्भेदनिकायभिन्नास्तेषां पदौ मूर्धनि संदधानः।
तेनैव जातं सुरदेवनाम तमर्चये यज्ञविधौ जलाद्यैः।।

ॐ ह्रीं सुरप्रभजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જે દેવ નિકાયની અપેક્ષાએ ચાર ભેદને પ્રાપ્ત છે તેમણે પોતાના મસ્તક ઉપર આપના ચરણ આદિ ધારણ કર્યા છે તેથી આપનું નામ શ્રી સૂરદેવ સાર્થક થયું. હું યજ્ઞવિધિમાં જલાદિ દ્રવ્યોથી આપની પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૦૨॥

भावार्थ :– जो देव निकाय की अपेक्षा चार भेद को प्राप्त हैं उन्होंने अपने मस्तक पर आपके चरणादि धारण किये हैं, इसीलिये आपका नाम सुरदेव सार्थक हुआ मैं यज्ञविधि में जलादि द्रव्यों से आपकी पूजा करता हूँ। ॥०४॥०२॥

सुप्रभ जी

॥०४॥०३॥

सेवार्थमुत्प्रेक्ष्य न भूतिदाता कारुण्यबुद्धयैव ददाति लक्ष्मीं।
यतो जिन: सुप्रभुरायसार्थं नामार्चयेऽहं विधिनाध्वरीयै:।।

ॐ ह्रीं सुप्रभुजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– પ્રાણીઓની સેવાથી પ્રસન્ન થઈને સંપત્તિ નથી આપતાં પરંતુ કરુણાબુદ્ધિથી લક્ષ્મી આપે છે. તેથી જેમને શ્રી સુપ્રભ આ સાર્થક નામ પ્રાપ્ત થયું છે તેમની હું યજ્ઞ દ્રવ્યોથી પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૦૩॥

भावार्थ :– प्राणियों की सेवा से प्रसन्न होकर संपत्ति नहीं देते किन्तु करुणा बुद्धि से ही लक्ष्मी देते हैं । इसलिए जिनको सुप्रभ यह सार्थक नाम प्राप्त हुआ है उनकी मैं यज्ञ द्रव्यों से पूजा करता हूँ। ॥०४॥०३॥

स्वयंप्रभ जी

॥०४॥०४॥

न केनचित्पदृविधायिमोक्षसाम्राज्यलक्ष्म्या: स्वयमेव लब्धं ।
स्वयंप्रभत्वं स्वयमेव जातं यस्याचर्यते पादसरोजयुग्मं ।।

ॐ ह्रीं स्वयंप्रभदेवायार्घम्।

ભાવાર્થ :– જેમને કોઈએ પણ મોક્ષના સામ્રાજ્યની લક્ષ્મીનો પટ્ટ નથી બાંધ્યો પરંતુ સ્વયં પ્રાપ્ત થયો છે, આ કારણે જેમને શ્રી સ્વયંપ્રભ નામ પ્રાપ્ત થયું છે, તેમના ચરણકમળ યુગલની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૪॥૦૪॥

भावार्थ :– जिन्हें किसी ने भी मोक्ष साम्राज्य को लक्ष्मी का पट्ट नहीं बांधा है, किन्तु स्वयं प्राप्त हुआ है इसलिए जिन्हें स्वयंप्रभ नाम प्राप्त हुआ है उनके चरण कमल युगल की हम पूजा करते हैं ॥०४॥०४॥

सर्वायुध जी

॥०४॥०५॥

सर्वं मनःकायवचःप्रहारे कर्मागसां शस्त्रमभूद् यतो यः ।
सर्वायुधाख्यामगमन्मयाद्य संपूज्यतेऽसौ कृतुभागभाज्यैः ।।

ॐ ह्रीं सर्वायुधदेवायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કર્મરૂપી પાપનો નાશ કરવા માટે જેમના મન, વચન, કાય સર્વે શસ્ત્રરૂપ થઈ ગયા હતાં તેથી તેઓ શ્રી સર્વાયુધ નામને પ્રાપ્ત થયા, એ જિનન્દ્રની હું આ યજ્ઞનું ફળ પ્રાપ્ત કરવા માટે પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૦૫॥

भावार्थ :– जिनके मन-वचन-काय कर्मरूपी पापों के नाश करने के लिए सर्वशस्त्र रूप हो गये थे इसलिए वह सर्वायुध नाम को प्राप्त हुए उन जिनेन्द्र की मैं इस यज्ञ के फल प्राप्त करने के लिए पूजा करता हूँ। ॥०४॥०५॥

जयदेव जी

॥०४॥०६॥

कर्मद्विषां मूलमपास्य लब्धो जयोऽन्यमर्त्यैरपि योऽनवाप्यः ।
ततो जयाख्यामुपलभ्यमानो मयार्हणाभिः परिपूज्यतेऽसौ ।।

ॐ ह्रीं जयदेवायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કર્મરૂપી વેરીઓને મૂળથી જ દૂર કરીને જેઓ જયને પ્રાપ્ત થયા છે કે જે અન્ય પ્રાણીઓ માટે દુર્લભ હોવાથી જેમને શ્રી જય નામ પ્રાપ્ત થયું છે, તેમની હું શ્રેષ્ઠ સામગ્રીથી પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૦૬॥

भावार्थ :– कर्मरूपी वैरियों को मूल से ही दूर कर जो जय को प्राप्त हुए वह अन्य प्राणियों को अप्राप्य है, इसीलिए जिन्हें जय नाम प्राप्त हुआ उनकी मैं श्रेष्ठ सामग्री से पूजा करता हूँ। ॥०४॥०६॥

उदयप्रभ जी

॥०४॥०७॥

आत्मप्रभावोदयनान्नितांतं लब्धोदयत्वादुदयप्रभाख्यां ।
समाप यस्मादपि सार्थकत्वात् कृतार्चनं तस्य कृती भवामि ।।

ॐ ह्रीं उदयप्रभजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- આત્માના પ્રભાવનો નિરંતર ઉદય થવાથી જેમને શ્રી ઉદયપ્રભ આ સાર્થક નામ પ્રાપ્ત થયું છે, તેમની પૂજા કરીને હું પુણ્યનો ભાગી (ભાગીદાર) થાઉં છું. ॥૦૪॥૦૭॥

भावार्थ :- आत्मा के प्रभाव का निरंतर उदय होने से जिन्हें उदयप्रभ यह सार्थक नाम प्राप्त हुआ है मैं उनकी पूजा करके पुण्य का भागी होता हूँ। ॥०४॥०७॥

प्रभादेव जी

॥०४॥०८॥

प्रभा मनीषा प्रकृतिर्मतिर्ज्ञाप्रभृत्युदीर्णैकफलेति मत्वा ।
जाता प्रभादेव इति प्रशस्तिस्ततोऽर्चनातोहमपि प्रयामि ।।

ॐ ह्रीं प्रभादेवजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– પ્રભા, મનિષા, પ્રકૃતિ, મતિ અને જ્ઞા આદિ શબ્દ એક ઉત્કૃષ્ટ ફળના ભાવાર્થમાં છે એવું માનીને જેમની શ્રી પ્રભાદેવ એવી પ્રશસ્ત ખ્યાતિ થઈ છે તેથી હું તેમની પૂજાવિધિ કરું છું. ॥૦૪॥૦૮॥

भावार्थ :– प्रभा, मनीषा, प्रकृति, मति और ज्ञा आदि शब्द एक उत्कृष्ट फल के भावार्थ में हैं ऐसा मानकर जिनकी प्रभादेव यह प्रशस्त ख्याति हुयी है, इसलिए मैं उनकी पूजा विधि को करता हूँ। ॥०४॥०८॥

उदंकदेव जी

॥०४॥०९॥

उदंकदेव त्वयि भक्तिभोग्या घटी घटी सा न तदुच्यते हा ।
त्वामेव लब्ध्वा जननं प्रयातं वरं यतस्त्वां भगवन् महामि ।।

ॐ ह्रीं उदंकदेवजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– હે શ્રી ઉદંકદેવ! આપની ભક્તિમાં જે સમય વ્યતીત થયો, તે ઓછો નથી થયો ભાવાર્થાત્ નિરર્થક નથી થયો પરંતુ આપને પ્રાપ્ત કરીને આ જીવન સફળ થઈ ગયું કે જેથી હું આપની પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૦૯॥

भावार्थ :– हे उदंकदेव ! आपकी भक्ति में जो घड़ी व्यतीत हुई वह घटी नहीं भावार्थात् निरर्थक नहीं हुई बल्कि आपको प्राप्त करके यह जीवन सफल हो गया इसलिए मैं आपकी पूजा करता हूँ। ॥०४॥०९॥

प्रश्नकीर्ति जी

॥०४॥१०॥

सुरासुरस्वांतगतभ्रमैकविध्वंसने प्रश्नकृतोपपत्त्या ।
कीर्तिं ययौ प्रोष्ठिलमुख्यनामस्तवैर्निरुक्तोऽहमुदंचयामि ।।

ॐ ह्रीं प्रश्नकीर्तिजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– પ્રશ્નની પ્રાપ્તિથી સુર અને અસુરના મનમાં ઉત્પન્ન થયેલા ભ્રમની સમાપ્તિથી જેમને કીર્તિ પ્રાપ્ત થઈ છે તથા જેમનું શ્રી પ્રૌષ્ઠિલ એવું બીજું નામ છે એવા આદિ નામની નિરુક્તિને અનુરૂપ શ્રી પ્રશ્નકીર્તિ દેવની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૧૦॥

भावार्थ :– प्रश्न की प्राप्ति से सुर असुरों के मन में उत्पन्न हुए भ्रम की समाप्ति से जिन्हें कीर्ति प्राप्त हुई है तथा जिनका प्रोष्ठिल दूसरा नाम है, आदि नाम की निरुक्ति के अनुरूप में प्रश्नकीर्ति देव की मैं पूजा करता हूँ। ॥०४॥१०॥

जयकीर्ति जी

॥०४॥११॥

पापाश्रवाणां दलनाद् यशोभिर्व्यक्तेर्जयात् कीर्तिसमागमेन ।
निरुक्तलक्ष्म्यै जयकीर्तिदिवं स्तवस्रजा नित्यमुपाचरामि ।।

ॐ ह्रीं जयकीर्तिदिवायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– પાપાસ્રવોના નાશથી યશ પ્રગટ થવાથી, જયથી, કીર્તિના સમાગમથી, નિરુક્તિ અને લક્ષણથી જેમને શ્રી જયકીર્તિ દેવ નામ પ્રાપ્ત થયું છે એવા જિનેન્દ્રદેવની હું નિત્ય સ્તુતિમાળા ભાવાર્થાત્ સ્તુતિથી પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૧૧॥

भावार्थ :– पापास्रवों के दलन से यश के प्रगट होने से, जय से, कीर्ति के समागम से, निरुक्ति और लक्षण से जिन्हें जयकीर्ति देव नाम प्राप्त हुआ है, उन जिनेन्द्रदेव की मैं नित्य स्तुति माला भावार्थात् स्तुतियों से पूजा करता हूँ। ॥०४॥११॥

पूर्णबुद्धि जी

॥०४॥१२॥

कैवल्यभानातिशये समग्रा बुद्धिप्रवृत्तिर्यत उत्तमार्था ।
तत्पूर्णबुद्धेश्चरणौ पवित्रावर्घ्येण यायज्मि भवप्रणष्ट्यै ।।

ॐ ह्रीं पूर्णबुद्धिजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કેવળજ્ઞાન ઉત્પત્તિના અતિશયથી સંપૂર્ણ બુદ્ધિની પ્રવૃત્તિ ઉત્તમ પ્રયોજનવાળી થાય છે. તેથી હું સંસારનો નાશ કરવા માટે શ્રી પૂર્ણબુદ્ધિ નામક જિનેન્દ્રના પવિત્ર ચરણોની અર્ઘ ચડાવીને પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૧૨॥

भावार्थ :– केवलज्ञान उत्पत्ति के अतिशय में सम्पूर्ण बुद्धि की प्रवृत्ति उत्तम प्रयोजनवाली होती है, इसलिए पूर्णबुद्धि नामक जिनेन्द्र के पवित्र चरणों की मैं संसार का नाश करने के लिए चरणों में अर्घ्य चढ़ाकर पूजा करता हूँ। ॥०४॥१२॥

निःकषाय जी

॥०४॥१३॥

क्रोधादयश्चात्मसपत्नभावं स्वधर्मनाशान्न जहत्युदीर्णं।
तेषां हतिर्येन कृता स्वशक्तेस्तं निःकषायं प्रयजामि नित्यं ।।

ॐ ह्रीं निःकषायजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ક્રોધાદિ કષાયો આત્માના ધર્મ (ગુણો)નો નાશ કરવાના કારણ હોવાથી આત્માના વેરી છે. તેઓ પોતાની નિકૃષ્ટતા છોડતાં નથી એટલે શ્રી નિઃકષાય જિનેન્દ્રએ પોતાની શક્તિથી તે કષાયોનો નાશ કર્યો છે તેથી હું તેમની પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૧૩॥

भावार्थ :– क्रोधादि कषायें आत्मा के धर्म (गुणों) का नाश करने के कारण आत्मा की वैरी हैं। वे अपनी उत्कटता नहीं छोड़ती हैं और निःकषाय जिनेन्द्र ने अपनी शक्ति से उन कषायों का नाश किया है इसलिए मैं उनकी पूजा करता हूँ। ॥०४॥१३॥

विमलप्रभ जी

॥०४॥१४॥

मलव्यपायान्मननात्मलाभाद् यथार्थशब्दं विमलप्रभेति ।
लब्धं कृतौ स्वीयविशुद्धिकामा: संपूजयामस्तमनर्घ्यजातं ।।

ॐ ह्रीं विमलप्रभदेवायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કર્મરૂપ મળનો નાશ કરવાના કારણે અને મનનથી આત્મવિશુદ્ધિના લાભને કારણે સાર્થક નામના અમૂલ્ય પદને પ્રાપ્ત એવા શ્રી વિમલપ્રભ જિનેન્દ્રની હું આ યજ્ઞમાં પોતાની વિશુદ્ધિ માટે પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૧૪॥

भावार्थ :– कर्मरूप मल का नाश करने के कारण एवं मनन से आत्म विशुद्धि के लाभ के कारण सार्थक नाम वाले अमूल्य पद को प्राप्त ऐसे विमलप्रभ जिनेन्द्र की मैं इस यज्ञ में अपनी विशुद्धि के लिए पूजा करता हूँ। ॥०४॥१४॥

बहुलप्रभ जी

॥०४॥१५॥

भास्वद्गुणग्रामविभासनेन पौरस्त्यसंप्राप्तविभावितानं ।
संस्मृत्य कामं बहुलप्रभं तं समर्चये तद्गुणलब्धिलुब्धः ॥

ॐ ह्रीं बहुलप्रभदेवायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- દૈદીપ્યમાન ગુણોના સમૂહને પ્રકાશિત કરીને જેમને પ્રભાનો સમૂહ પ્રાપ્ત થયો છે, એ ગુણોની પ્રાપ્તિનો ઇચ્છુક હું શ્રી બહુલપ્રભ જિનેન્દ્રની પૂર્ણ મનોભાવથી પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૧૫॥

भावार्थ :- दैदीप्यमान गुणों के समूह को प्रकाशित करके जिन्हें प्रभा का समूह प्राप्त हुआ है, उन गुणों की प्राप्ति का इच्छुक मैं बहुलप्रभ जिनेन्द्र की पूर्ण मनोभाव से पूजा करता हूँ। ॥०४॥१५॥

निर्मलनाथ जी

॥०४॥१६॥

नीराभ्ररत्नानि सुनिर्मलानि प्रवाद एषोऽनृतवादिनां वै ।
येन द्विधा कर्ममलो निरस्तः स निर्मलः पातु सदर्चितो माम् ।।

ॐ ह्रीं निर्मलजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જળ, આકાશ, રત્ન એ તો નિર્મળ છે; આ ખોટું બોલવાવાળાનો ખોટો પ્રવાદ છે. જેમણે બંને પ્રકારના મળનો નાશ કર્યો છે એવા શ્રી નિર્મલનાથ ભગવાનની હું પૂજા કરું છું. તેઓ મારી રક્ષા કરો. ॥૦૪॥૧૬॥

भावार्थ :– जल, आकाश, रत्न ये निर्मल हैं, यह झूठ बोलनेवालों का झूठा प्रवाद है । जिन्होंने दोनों प्रकार के मलों का नाश कर दिया है, ऐसे निर्मलनाथ भगवान की मैं पूजा करता हूँ। वे मेरी रक्षा करें। ॥०४॥१६॥

चित्रगुप्ति जी

॥०४॥१७॥

मनोवचःकायनियंत्रणेन चित्राऽस्ति गुप्तिर्यदवाप्तिपूर्तेः ।
तं चित्रगुप्ताह्वयमर्चयामि गुप्तिप्रशंसाप्तिरियं मम स्यात् ।।

ॐ ह्रीं चित्रगुप्तिजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– મન, વચન, કાયાને વશમાં કરવાથી જેમને ચંદ્રગુપ્તિ નામ પ્રાપ્ત થયું છે. મને પણ પ્રશસ્ત ગુપ્તિની પ્રાપ્ત થાય તે માટે હું શ્રી ચંદ્રગુપ્તિ જિનેન્દ્રની પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૧૭॥

भावार्थ :– मन-वचन-काय को वश में करने से जिन्हें चित्रगुप्ति नाम प्राप्त हुआ है। मुझे भी प्रशस्त गुप्ति की प्राप्ति हो, इसलिए मैं चित्रगुप्ति जिनेन्द्र की पूजा करता हूँ। ॥०४॥१७॥

समाधिगुप्त जी

॥०४॥१८॥

अपारसंसारगतौ समाधिर्लब्धो न यस्माद् विहित: स येन ।
समाधिगुप्तिर्जिनमर्चयित्वा लभे समाधिं त्विति पूजयामि ।।

ॐ ह्रीं समाधिगुप्तजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– આ અપાર સંસારની વિચિત્રતામાં સમાધિમરણ ન કરી શક્યો અને જેમણે તે સમાધિને પ્રાપ્ત કરી છે એવા શ્રી સમાધિગુપ્ત જિનેન્દ્રની હું સમાધિની પ્રાપ્તિ માટે પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૧૮॥

भावार्थ :– इस अपार संसार की विचित्रता में समाधिमरण नहीं कर पाया और जिन्होंने उस समाधि को पाया है उन समाधिगुप्त जिनेन्द्र की मैं समाधि की प्राप्ति के लिए पूजा करता हूँ। ॥०४॥१८॥

स्वयंभू जी

॥०४॥१९॥

स्वयं विनाऽन्यस्य सुयोगमात्मस्वशक्तिमुद्भाव्य निजस्वरूपे ।
व्यक्तो बभूवेति जिन: स्वयंभूर्दध्यात् शिवं पूजनयानयार्च्य: ॥

ॐ ह्रीं स्वयंभूजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- જેમણે અન્યના સહયોગ વિના, સ્વયં પોતાની શક્તિને પ્રગટ કરી, પોતાના સ્વરૂપને વ્યક્ત કર્યું છે એવા શ્રી સ્વયંભૂ જિનની હું પૂજા કરું છું. તેઓ મને મોક્ષ પ્રદાન કરે. ॥૦૪॥૧૯॥

भावार्थ :- जिन्होंने अन्य के सहयोग के बिना, स्वयं अपनी शक्ति को प्रगट कर, अपने स्वरूप को व्यक्त किया है उन स्वयंभूजिन की मैं पूजा करता हूँ। वे मुझे मोक्ष प्रदान करें। ॥०४॥१९॥

कंदर्प जी

॥०४॥२०॥

कंदर्पनाम स्मरसद्भटस्य मुधैव नामेति तदर्दनोद्धः ।
प्रशस्तकंदर्प इयाय शक्तिं यतोऽर्चयेऽहं तदयोगबुद्धये ।।

ॐ ह्रीं कंदर्पजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કામરૂપ સુભટનું કંદર્પ નામ વ્યર્થ છે કારણ કે જેઓ તેને પરાસ્ત કરવામાં સમર્થ થઈને પ્રશસ્ત કંદર્પ થઈને આત્મશક્તિને પ્રાપ્ત થયા એવા શ્રી કંદર્પ જિનેન્દ્રની હું કામનો અભાવ કરવાની બુદ્ધિથી પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૨૦॥

भावार्थ :– कामरूप सुभट का कंदर्प नाम व्यर्थ है क्योंकि जो उसे परास्त करने में समर्थ होकर प्रशस्त कंदर्प होकर आत्मशक्ति को प्राप्त हुए उन श्री कंदर्प जिनेन्द्र की मैं काम के अभाव करने की बुद्धि से पूजा करता हूँ। ॥०४॥२०॥

जयनाथ जी

॥०४॥२१॥

अनेकनामानि गुणैरनंतैर्जिनस्य बोध्यानि विचारवद्धिः ।
जयं तथा न्यासमथैकविंशमनागतं संप्रति पूजयामि ।।

ॐ ह्रीं जयनाथजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જિનેન્દ્રના અનંતગુણોને કારણે અનેક નામ જ્ઞાનીઓને જાણવાયોગ્ય છે. તેથી શ્રી જયનાથ તથા શ્રી ન્યાસ નામના ભવિષ્યકાળના જિનેન્દ્રની હું વર્તમાનમાં પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૨૧॥

भावार्थ :– जिनेन्द्र के अनंत गुणों के कारण अनेक नाम ज्ञानियों को जानने योग्य हैं। इसलिए जयनाथ तथा न्यास नामक भविष्यत कालीन जिनेन्द्र की मैं वर्तमान में पूजा करता हूँ। ॥०४॥२१॥

विमलेश जी

॥०४॥२२॥

अभ्यर्हितात्मप्रगुणस्वभावं मलापहं श्रीविमलेशमीशं ।
पात्रे निधायार्घ्यमफल्गुशीलोद्धुरप्रशक्त्यै जिनमर्चयामि ।।

ॐ ह्रीं विमलेशजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– પૂજ્ય અને આત્મગુણોના સ્વભાવરૂપ તથા મળને દૂર કરનારા શ્રી વિમલેશ જિનેન્દ્રની હું મહાન શીલની રક્ષા માટે પાત્રમાં અર્ઘ્ય સ્થાપિત કરીને પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૨૨॥

भावार्थ :– पूज्य और आत्मगुणों के स्वभावरूप तथा मल को दूर करनेवाले श्री विमलेश जिनेन्द्र की मैं महान शील की रक्षा की शक्ति के लिए पात्र में अर्घ स्थापित कर पूजा करता हूँ। ॥०४॥२२॥

दिव्यवाद जी

॥०४॥२३॥

अनेकभाषा जगति प्रसिद्धाः परंतु दिव्यो ध्वनिरर्हतो वै ।
एवं निरूप्यात्मनि तत्त्वबुद्धिमभ्यर्चयामो जिनदिव्यवादं ॥

ॐ ह्रीं दिव्यवादजिनायार्घ्यं ।

ભાવાર્થ :- આ જગતમાં અનેક ભાષાઓ પ્રસિદ્ધ છે પરંતુ દિવ્ય ભાષા અરિહંતની જ છે, એવી તત્ત્વબુદ્ધિથી આત્મામાં વિચાર કરીને આપણે શ્રી દિવ્યવાદ જિનેન્દ્રની પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૪॥૨૩॥

भावार्थ :- इस जगत में अनेक भाषाएँ प्रसिद्ध हैं परन्तु दिव्य भाषा अर्हंत की ही है, ऐसी तत्त्वबुद्धि से आत्मा में विचार करके हम दिव्यवाद जिनेन्द्र की पूजा करते हैं। ॥०४॥२३॥

अनंतवीर्य जी

॥०४॥२४॥

शक्तेरपारश्चित एव गीतस्तथापि तद् व्यक्तिमियर्ति लब्ध्या ।
अनंतवीर्यं त्वमगाः सुयोगात्त्वामर्चये त्वत्पदघृष्टमूर्ध्ना ॥

ॐ ह्रीं अनन्तवीर्यजिनायार्घम्।

ભાવાર્થ :– ચૈતન્યની અનંત શક્તિની વ્યક્તિ લબ્ધિથી થાય છે, આપ સુયોગથી અનંત શક્તિને પ્રાપ્ત થયા છો, તેથી હું આપના (શ્રી અનંતવીર્ય જિનેન્દ્રના) ચરણોમાં મસ્તક રાખીને પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥૨૪॥

भावार्थ :– चैतन्य की अनन्तरशक्ति की व्यक्ति लब्धि से होती है, आप सुयोग से अनन्त शक्ति को प्राप्त हुए हैं, इसलिए मैं आपके चरणों में मस्तक रखकर पूजा करता हूँ। ॥०४॥२४॥

सामूहिक अर्घ

॥०४॥२५॥

काले भाविनि ये सुतीर्थधरणात् पूर्वं प्ररूप्यागमे
विख्याता निजकर्मसंततिमपाकृत्य स्फुरच्छक्तय: ।
तानत्र प्रतिकृत्यपावृतमखे संपूजिता भक्तित:
प्राप्ताशेषगुणास्तदीप्सितपदावाप्त्यै तु संतु श्रिये ।।

ॐ ह्रीं बिंबप्रतिष्ठोद्यापने मुख्यपूजार्ह चतुर्थवलयोन्मुद्रितानागत-चतुर्विंशतिमहापद्माद्यनंतवीर्यांतेभ्यो जिनेभ्य: पूर्णार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ ભવિષ્યમાં તીર્થંકર પ્રકૃતિનો બંધ કરવાથી પૂર્વે આગમમાં પ્રસિદ્ધ છે, નિજકર્મોની પરંપરાને દૂર કરવાથી જેમને અનંત શક્તિ પ્રગટ છે, તેઓ અહીં જિનબિંબ યજ્ઞોમાં ભક્તિથી પૂજવામાં આવ્યા છે, જેમને સમસ્ત ગુણ પ્રાપ્ત થઈ ગયા છે, તે જિનેન્દ્ર પોતાનું પદ અમને આપવા માટે મોક્ષલક્ષ્મી આપે. ॥૦૪॥૨૫॥

भावार्थ :– जो भविष्य में तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने से पूर्व आगम में प्रसिद्ध हैं, निज कर्मों की परम्परा को दूर करने से जिन्हें अनन्तरशक्ति प्रकट हुयी है, वे यहाँ जिनबिम्ब यज्ञ में भक्ति से पूजे गये हैं, जिन्हें समस्त गुण प्राप्त हो गये हैं, वे जिनेन्द्र अपना पद हमें देने के लिए मोक्ष लक्ष्मी देवें। ॥०४॥२५॥

पंचम वलय परिचय

<u>वलय में अर्घ्य की संख्या</u> : २१ (विहरमान २० तीर्थंकर के २० अर्घ्य और १ समुच्च्य अर्घ्य)

<u>वलय का विषय एवं संक्षिप्त परिचय :</u> इस वलय में विदेहक्षेत्र के २० तीर्थंकर भगवंतों की पूजन की है। श्री सीमंधर भगवान से लेकर श्री अजितवीर्य भगवान तक उन प्रत्येक तीर्थंकर को अर्घ्य समर्पित किया है।

<u>वलय एवं अर्घ्य का दृशिकरण :</u> इस वलय में ढाई द्वीप के ५ मेरु के पूर्व और पश्चिम विदेहक्षेत्र में स्थित २० विहरमान तीर्थंकरो के समवशरण (धर्मसभा) का दृशीकरण किया है। इन प्रत्येक समवशरण में सोनगढ़ के अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के पवित्र करकमल से प्रतिष्ठित एवं उनके प्रभावना योग मैं स्थापित जिन प्रतिमाओं को दर्शाया गया है। यह ढाई द्वीप की डिजिटल रचना ढाईद्वीप जिनायतन (इन्दौर) के आधार से एवं धर्मसभा की रचना सोनगढ स्थित समवशरण के आधार से की गई है।

सीमंधर जी

॥०५॥०१॥

सीमंधरं मोक्षमहीनगर्याः श्रीहंसचित्तोदयभानुमंतं ।
यत्पुंडरीकाख्यपुरस्वजात्या पूतीकृतं तं महसार्चयामि ।।

ॐ ह्रीं सीमंधरजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– મોક્ષપૃથ્વીરૂપી નગરીની સીમાને ધારણ કરનારા, શ્રીમાન હંસરાજાના મનરૂપી ઉદયાચળમાં સૂર્ય સમાન તથા પોતાના જન્મથી પુંડરીકપુર નગરને પવિત્ર કરનારા શ્રી સીમંધર જિનેન્દ્રદેવની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૦૧॥

भावार्थ :– मोक्षपृथ्वीरूपी नगरी की सीमा को धारण करने वाले श्रीमान हंसराजा के मनरूपी उदयाचल में सूर्य समान तथा अपने जन्म से पुण्डरीकपुर नगर को पवित्र करनेवाले सीमंधर जिनेन्द्र की मैं पूजा करता हूँ। ॥०५॥०१॥

युग्मंधर जी

॥०५॥०२॥

युग्मंधरं धर्मनयप्रमाणवस्तुव्यवस्थादिषु युग्मवृत्तेः।
संधारणात् श्रीरुहभूपजातं प्रणम्य पुष्पांजलिनार्चयामि ।।

ॐ ह्रीं युग्मंधरजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ધર્મ, નય, પ્રમાણ આદિ વસ્તુ વ્યવસ્થામાં યુગ્મ ભાવાર્થાત્ બેની પ્રવૃત્તિ છે, જેવી રીતે ધર્મ - મુનિ અને શ્રાવકના ભેદથી, નય - દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિકના ભેદથી, પ્રમાણ - પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષના ભેદથી, વસ્તુ વ્યવસ્થા - સ્વ-પરના નિમિત્તથી બે-બે રૂપ વૃત્તિને ધારણ કરવાથી યુગમંધર થયા અને શ્રીરૂહ નામક રાજાથી ઉત્પન્ન થયા, તે શ્રી યુગમંધર જિનેન્દ્રની હું પુષ્પાંજલિથી પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૦૨॥

भावार्थ :– धर्म, नय प्रमाण आदि वस्तु की व्यवस्था में युग्म भावार्थात् दो की प्रवृत्ति है, जैसे धर्म - मुनि और श्रावक के भेद से, नय - द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक के भेद से, प्रमाण - प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से, वस्तु व्यवस्था - स्व-पर निमित्त के भेद से दो-दो रूप वृत्ति को धारण करने से युग्मंधर हुए एवं श्रीरुह नामक राजा से उत्पन्न हुए युग्मंधरजिनेन्द्र की मैं पुष्पांजलि से पूजा करता हूँ। ॥०५॥०२॥

बाहु जी

॥०५॥०३॥

सुग्रीवराजोद्भवमेणचिह्नं सुसीमपुर्यां विजयाप्रसूतं ।
बाहुं त्रिलाकोद्धरणाय बाहुं मखे पवित्रेऽर्चितमर्घयामि ।।

ॐ ह्रीं बाहुजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સુગ્રીવ નામક રાજાથી ઉત્પન્ન, હરણ ચિહ્ન યુક્ત અને સુસીમા નગરીમાં વિજયા નામક રાણીના પુત્ર તથા ત્રણલોકનો ઉદ્ધાર કરવા માટે, બાહુની જેમ પૂજ્ય શ્રીબાહુ નામના તીર્થંકરની આ પવિત્ર યજ્ઞમાં અર્ધ્યથી પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૦૩॥

भावार्थ :– सुग्रीव नामक राजा से उत्पन्न, हरिण चिह्न युक्त और सुसीमा नगरी में विजया नामक रानी के पुत्र तथा तीन लोक का उद्धार करने के लिए बाहु की तरह पूज्य बाहु नामक तीर्थंकर की इस पवित्र यज्ञ में अर्घ से पूजा करता हूँ। ॥०५॥०३॥

सुबाहु जी

॥०५॥०४॥

निःशल्यवंशाभ्रगभस्तिमंतं सुनंदया लालितमुग्रकीर्तिं ।
अबंध्यदेशाधिपतिं सुबाहुं तोयादिभिः पूजितुमुत्सहेऽहं ।।

ॐ ह्रीं सुबाहुजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– નિઃશલ્ય વંશરૂપી આકાશમાં સૂર્ય સમાન, સુનંદા માતાથી લાલિત, વિસ્તૃત કીર્તિધારી તથા અબંધ્ય નામના દેશના સ્વામી શ્રી સુબાહુ તીર્થંકરની હું ઉત્સાહપૂર્વક જળ આદિથી દ્રવ્યોથી પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૦૪॥

भावार्थ :– निःशल्य वंशरूपी आकाश में सूर्य के समान, सुनंदा माता से लालित, विस्तृत कीर्तिधारी तथा अबंध्य नामक देश के स्वामी सुबाहु तीर्थंकर की मैं उत्साहपूर्वक जलादि द्रव्यों से पूजा करता हूँ। ॥०५॥०४॥

संजातक जी

॥०५॥०५॥

श्रीदेवसेनात्मजमर्यमांकं विदेहवर्षेप्यलकापुरिस्थं ।
संजातकं पुण्यजनुर्धरत्वात् सार्थाख्यमर्चेऽत्र मखे जलाद्यैः ।।

ॐ ह्रीं संजातकजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– શ્રીમાન દેવસેન રાજાના પુત્ર, સૂર્ય ચિહ્ન યુક્ત, વિદેહક્ષેત્રમાં પણ અલકાના સ્વામી પુણ્ય જન્મને ધારણ કરવાથી સાર્થક નામ યુક્ત એવા શ્રી સંજાતકસ્વામીની હું આ યજ્ઞમાં જળ આદિ દ્રવ્યોથી પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૦૫॥

भावार्थ :– श्रीमान देवसेन राजा के पुत्र सूर्य चिह्न युक्त, विदेहक्षेत्र में भी अलका के स्वामी पुण्य जन्म को धारण करने से सार्थक नाम युक्त ऐसे संजातकस्वामी की मैं इस यज्ञ में जलादि द्रव्यों से पूजा करता हूँ। ॥०५॥०५॥

स्वयंप्रभ जी

॥०५॥०६॥

स्वयं कृतात्मप्रभवत्वहेतोः स्वयंप्रभुं सद्धृदयस्वभूतं ।
सन्मंगलापूःस्थमनुष्णकांतिचिह्नं यजामोऽत्र महोत्सवेषु ॥

ॐ ह्रीं स्वयंप्रभजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સ્વયંકૃત આત્મપ્રભાવના કારણે તેઓ શ્રી સ્વયંભૂ કહેવાય છે, જેઓ સત્પુરુષોના હૃદયમાં વિદ્યમાન છે. મંગલા નગરીના સ્વામી ચંદ્રના ચિહ્નથી યુક્ત એવા શ્રી સ્વયંપ્રભ તીર્થંકરની હું આ મહોત્સવમાં પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૦૬॥

भावार्थ :– स्वयंकृत आत्मप्रभाव के कारण जो स्वयंभू कहलाते हैं, जो सत्पुरुषों के हृदय में विद्यमान हैं, मंगला नगरी के स्वामी चन्द्रमा के चिन्हयुक्त ऐसे स्वयंप्रभ तीर्थंकर की मैं महोत्सव में पूजा करता हूँ। ॥०५॥०६॥

ऋषभानन जी

॥०५॥०७॥

श्रीवीरसेनाप्रसवं सुसीमाधीशं सुराणामृषभाननं तं ।
ईशं सुसौभाग्यभुवं महेशमर्चे विशालैश्चरुभिर्नवीनैः ।।

ॐ ह्रीं ऋषभाननदेवायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– શ્રીમતી વીરસેના માતાથી ઉત્પન્ન અને સુસીમા નગરીના સ્વામી તથા દેવોમાં ઈશ્વર તથા સૌભાગ્યની ખાણ એવા શ્રી ઋષભાનન મહેશની હું નવીન અને વિશાળ નૈવેદ્યથી પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૦૭॥

भावार्थ :– श्रीमती वीरसेना माता से उत्पन्न और सुसीमा नगरी के स्वामी तथा देवों में ईश्वर एवं सौभाग्य की खान ऐसे ऋषभानन महेश की मैं नवीन और विशाल नैवेद्य से पूजा करता हूँ। ॥०५॥०७॥

अनंतवीर्य जी

॥०५॥०८॥

यस्यास्ति वीर्यस्य न पारमभ्रे तारागणस्येव नितांतरम्यं ।
अनंतवीर्यप्रभुमर्चयित्वा कृतीभवाम्यत्र मखे पवित्रे ।।

ॐ ह्रीं अनंतवीर्यजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેવી રીતે આકાશમાં તારાગણનો પાર નથી, તેવી રીતે જેમના વીર્યનો પાર નથી તથા અત્યાધિક રમણીય એવા શ્રી અનંતવીર્ય પ્રભુની આ પવિત્ર યજ્ઞમાં પૂજા કરીને કૃતકૃત્ય થાઉં છું. ॥૦૫॥૦૮॥

भावार्थ :– जैसे आकाश में तारागण का पार नहीं है उसी प्रकार जिनके वीर्य का पार नहीं है तथा अत्यधिक रमणीय ऐसे अनंतवीर्य प्रभु की मैं इस पवित्र यज्ञ में पूजा करके कृतकृत्य होता हूँ। ॥०५॥०८॥

सूरिप्रभ जी

॥०५॥०९॥

वृषांकमुच्चैश्चरणे विभाति यस्यापरस्ताद् वृषभूतिहेतुः ।
सूरिप्रभुं तं विधिना महामि वार्मुख्यतत्त्वैः शिवतत्त्वलब्ध्यै ।।

ॐ ह्रीं सूरिप्रभजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના ચરણોમાં વૃષભનું ચિહ્ન સુશોભિત છે, જેઓ ભવ્યોને ભવિષ્યમાં ધર્મની વિભૂતિનું કારણ છે એવા શ્રી સૂરિપ્રભ જિનેન્દ્રની હું મોક્ષ પ્રાપ્તિ માટે જળ આદિ દ્રવ્યોથી પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૦૯॥

भावार्थ :– जिनके चरणों में वृषभ का चिह्न सुशोमित है, जो भव्यों को भविष्य में धर्म की विभूति के कारण हैं, ऐसे सूरिप्रभ जिनेन्द्र की मैं मोक्ष प्राप्ति के लिए जलादि द्रव्यों से पूजा करता हूँ। ॥०५॥०९॥

विशालप्रभ जी

॥०५॥१०॥

वीर्येशभूमीरुहपुष्पमिंद्रसल्लांछनं पुंडरपूष्किरीटं ।
विशालमीशं विजयाप्रसूतमर्चामि तद्ध्यानपरायणोऽहं ।।

ॐ ह्रीं विशालप्रभजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- વીર્ય રાજાના પુત્ર તથા ઇન્દ્રના ચિહ્નથી યુક્ત અને પુંડરીકિણી નગરીના મુકુટરૂપ વિશાલ ઈશ તથા વિજયા માતાએ જેને જન્મ આપ્યો એવા શ્રી વિશાલપ્રભ તીર્થંકરના ધ્યાનમાં તત્પર થતો થકો હું તેમની પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૧૦॥

भावार्थ :- वीर्य राजा के पुत्र तथा इन्द्र के चिह्न से युक्त और पुण्डरीकिणी नगरी के मुकुटरूप विशाल ईश एवं विजया माता ने जन्में ऐसे विशालप्रभ तीर्थंकर के ध्यान में तत्पर होता हुआ मैं उनकी पूजा करता हूँ। ॥०५॥१०॥

वज्रधर जी

॥०५॥११॥

सरस्वतीपद्मरथांगजातं शंखांकमुच्चैः श्रियमीशितारं ।
संमान्य तं वज्रधरं जिनेंद्रं जलाक्षतैरर्चितमुत्करोमि ।।

ॐ ह्रीं वज्रधरजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સરસ્વતી રાણી અને પદ્મરથ રાજાના પુત્ર તથા શંખના ચિહ્નથી યુક્ત, ઉત્કૃષ્ટ લક્ષ્મીના સ્વામી એવા શ્રી વજ્રધર જિનેન્દ્રની હું સન્માનપૂર્વક જલાક્ષત આદિ દ્રવ્યોથી પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૧૧॥

भावार्थ :– सरस्वती रानी और पद्मरथ राजा के पुत्र तथा शंख के चिह्न से युक्त उत्कृष्ट लक्ष्मी के स्वामी ऐसे वज्रधर - जिनेन्द्र की मैं सम्मान पूर्वक जल, अक्षत आदि द्रव्यों से पूजा करता हूँ। ॥०५॥११॥

चन्द्रानन जी

॥०५॥१२॥

वाल्मीकवंशांबुधिशीतरश्मिं दयावतीमातृकमंक्यगावं ।
सत्पुंडरीकिण्यवनं जिनेंद्रं चंद्राननं पूजयताज्जलाद्यैः ।।

ॐ ह्रीं चन्द्राननजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– વાલ્મીક વંશરૂપી સમુદ્રને વધારવા માટે ચંદ્રમા સમાન અને દયાવતી માતાના પુત્ર તથા ગાયના ચિહ્ન યુક્ત અને પુંડરીકિણી નગરીના પાલક એવા શ્રી ચંદ્રાનન જિનેન્દ્રની જલાદિક દ્રવ્યોથી પૂજા કરો. ॥૦૫॥૧૨॥

भावार्थ :– वाल्मीक वंशरूपी समुद्र को बढ़ाने के लिए चन्द्रमा के समान और दयावती माता के पुत्र तथा गौ के चिह्नयुक्त एवं पुण्डरीकिणी नगरी के पालक ऐसे चन्द्रानन जिनेन्द्र की जलादि द्रव्यों से पूजा करो। ॥०५॥१२॥

चन्द्रबाहु जी

॥०५॥१३॥

श्रीरेणुकामातृकमब्जचिह्नं देवेशमुत्पुत्रमुदारभावं ।
श्रीचंद्रबाहुं जिनमर्चयामि कृतुप्रयोगे विधिना प्रणम्य ।।

ॐ ह्रीं चन्द्रबाहुजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– શ્રીમતી રેણુકા માતાના પુત્ર અને કમળના ચિહ્ન સહિત, ઉદારભાવવાળા, શ્રી ચંદ્રબાહુ દેવેશ જિનેન્દ્રને નમસ્કાર કરીને હું યજ્ઞની વિધિમાં પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૧૩॥

भावार्थ :– श्रीमती रेणुका माता के पुत्र और कमल के चिह्न सहित, उदार भाव वाले चन्द्रबाहु देवेश जिनेन्द्र को नमस्कार कर मैं यज्ञ की विधि में पूजा करता हूँ। ॥०५॥१३॥

भुजंगम जी

॥०५॥१४॥

भुजंगमं स्वीयभुजेन मोक्षपंथावरोहाधृतनामकीर्तिम् ।
महाबलक्ष्मापतिपुत्रमर्चे चंद्रांकयुक्तं महिमाविशालं ।।

ॐ ह्रीं भुजंगमजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– પોતાની ભૂજાઓના બળથી મોક્ષમાર્ગમાં અવરોહણ કરવાથી સાર્થક નામવાળા અને મહાબલરાજાના પુત્ર તથા ચંદ્રના ચિહ્ન સહિત, મહિમાવાન, શ્રી ભુજંગમનાથ તીર્થંકરની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૧૪॥

भावार्थ :– अपनी भुजाओं के बल से मोक्षमार्ग में अवरोहण करने से सार्थक नामवाले और महाबल राजा के पुत्र तथा चन्द्रमा के चिह्न सहित महिमावान भुजंगमनाथ तीर्थंकर की मैं पूजा करता हूँ। ॥०५॥१४॥

ईश्वर जी

॥०५॥१५॥

ज्वालाप्रसूर्येन सुशांतिमाप्ता कृतार्थतां वा गलसेनभूपः ।
सोऽयं सुसीमापतिरीश्वरो मे बोधिं ददातु त्रिजगद्विलासां ।।

ॐ ह्रीं ईश्वरजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જ્વાલા માતાના જેમનાથી શાંતિને પ્રાપ્ત થતી થકી, કૃતાર્થપણાને પ્રાપ્ત થતી થકી અને ગલસેન રાજા કૃતાર્થ થયા તે શ્રી સુસીમા નગરીના સ્વામી, શ્રી ઈશ્વર નામના તીર્થંકર ત્રણ જગતમાં શ્રેષ્ઠ રત્નત્રયરૂપી લક્ષ્મી મને પ્રદાન કરે. ॥૦૫॥૧૫॥

भावार्थ :– ज्वाला माता जिनसे शांति को प्राप्त होती हुयी कृतार्थपने को प्राप्त हुयी एवं गलसेन राजा कृतार्थ हुए वे सुसीमा नगरी के स्वामी ईश्वर नामक तीर्थंकर तीन जगत में श्रेष्ठ रत्नत्रय रूपी लक्ष्मी मुझे प्रदान करो। ॥०५॥१५॥

नेमिप्रभ जी

॥०५॥१६॥

नेमिप्रभं धर्मरथांगवाहे नेमिस्वरूपं तपनांकमीडे ।
वाश्चंदनैः शालिसुमप्रदीपैः धूपैः फलैश्चारुचरुप्रतानैः ।।

ॐ ह्रीं नेमिप्रमजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :–ધર્મરૂપી રથને ચલાવવામાં નેમિ સ્વરૂપ અને સૂર્ય ચિહ્નવાળા, એવા શ્રી નેમિપ્રભ તીર્થંકરની જળ, ચંદન, તાંદુલ, પુષ્પ, નૈવેદ્ય, દીપ, ધૂપ અને ફળથી પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૧૬॥

भावार्थ :– धर्मरूपी रथ के चलाने में नेमिस्वरूप और सूर्य चिह्न वाले ऐसे नेमिप्रभ तीर्थंकर की जल, चंदन, तंदुल,पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल से पूजा करता हूँ। ॥०५॥१६॥

वीरसेन जी

॥०५॥१७॥

श्रीवीरसेनाप्रभवं प्रदुष्टकर्मारिसेनाकरिणे मृगेंद्रः ।
यः पुंडरीशं जिनवीरसेनं सद्भूमिपालात्मजमर्चयामि ।।

ॐ ह्रीं वीरसेनजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– શ્રીમતી વીરસેના માતાથી ઉત્પન્ન અને દુષ્ટ કર્મરૂપી વેરીઓની સેના માટે સિંહ સમાન તથા પુંડરીક નગરીના સ્વામી અને સમીચીન ભૂમિપાલ રાજાના પુત્ર એવા શ્રી વીરસેન જિનેન્દ્રની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૧૭॥

भावार्थ :– श्रीमती वीरसेना माता से उत्पन्न और दुष्ट कर्मरूपी वैरियों की सेना के लिए सिंह के समान तथा पुण्डरीक नगरी के स्वामी एवं समीचीन भूमिपाल राजा के पुत्र ऐसे वीरसेन जिनेन्द्र की मैं पूजा करता हूँ। ॥०५॥१७॥

महाभद्र जी

॥०५॥१८॥

यो देवराजक्षितिपालवंशदिवामणि: पूर्विजयेश्वरोऽभूत् ।
उमाप्रसूनो व्यवहारयुक्त्या श्रीमन्महाभद्र उदर्च्यतेऽसौ ।।

ॐ ह्रीं महाभद्रजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- જે દેવરાજ રાજાના વંશમાં સૂર્ય સમાન અને વિજયા નગરીના સ્વામી હતા અને વ્યવહારનયથી ઉમા માતાથી ઉત્પન્ન થયા હતા એવા શ્રીમાન મહાભદ્રસ્વામીની હું શ્રેષ્ઠ પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૧૮॥

भावार्थ :- जो देवराज राजा के वंश में सूर्य के समान और विजया नगरी के स्वामी थे एवं व्यवहारनय से उमा नामक माता से उत्पन्न हुए थे, ऐसे श्रीमान महाभद्रस्वामी की मैं श्रेष्ठ पूजा करता हूँ। ॥०५॥१८॥

देवयश जी

॥०५॥१९॥

गंगाखनिस्फारमणिं सुसीमापुरीश्वरं वै स्तवभूतिपुत्रं ।
स्वस्तिप्रदं देवयशोजिनेंद्रमर्चामि सत्स्वस्तिकलांछनीयं ।।

ॐ ह्रीं देवयशोजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ગંગામાતારૂપી ખાણના સ્ફુરાયમાન રત્નસ્વરૂપ અને સુસીમાનગરીના ઈશ્વર, સ્તવભૂતિરાજાના પુત્ર અને કલ્યાણ કરનારા, સમીચીન સ્વસ્તિકના ચિહ્નથી યુક્ત એવા શ્રી દેવયશો નામના જિનેન્દ્રની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૧૯॥

भावार्थ :– गंगा मातारूपी खानि के स्फुरायमान रत्नस्वरूप और सुसीमा नगरी के ईश्वर, स्तवभूति राजा के पुत्र एवं कल्याण को देनेवाले, समीचीन स्वस्तिक के चिह्न से युक्त ऐसे देवयशो नामक जिनेन्द्र की मैं पूजा करता हूँ। ॥०५॥१९॥

अजितवीर्य जी

॥०५॥२०॥

कनकभूपतितोकमकोपकं कृततपश्चरणार्दितमोहकं ।
अजितवीर्यजिनं सरसीरुहविशदचिह्नमहं परिपूजये ।।

ॐ ह्रीं अजितवीर्यजिनायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– કનક રાજાના પુત્ર અને ક્રોધથી રહિત તથા તપશ્ચરણથી મોહને પીડિત (ક્ષય) કરનારા અને કમળના નિર્મળ ચિહ્નથી યુક્ત એવા શ્રી અનંતવીર્ય જિનેન્દ્રની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥૨૦॥

भावार्थ :– कनक राजा के पुत्र और क्रोध से रहित तथा तपश्चरण से मोह को पीड़ित (क्षय) करने वाले, एवं कमल के निर्मल चिह्न युक्त ऐसे अनंतवीर्य जिनेन्द्र की मैं पूजा करता हूँ। ॥०५॥२०॥

सामूहिक अर्घ

॥०५॥२१॥

एवं पंचमकोष्ठपूजितजिना: सर्वे विदेहोद्भवा
नित्यं ये स्थितिमादधु: प्रतिपतत्तन्नाममंत्रोत्तमा: ।
कस्मिंश्चित्समयेऽभ्रषट्-विधुमितं पूर्णं जिनानां मतं
ते कुर्वंतु शिवात्मलाभमनिशं पूर्णार्घसंमानिता: ॥

ॐ ह्रीं बिम्बप्रतिष्ठाध्वरोद्यापने मुख्यपूजार्हपंचमवलयोन्मुद्रित विदेहक्षेत्रे सुषष्टिसहितैकशतजिनेश-सयुंक्त नित्यविहरमाणविंशतिजिनेभ्य:पूर्णार्घम्।

ભાવાર્થ :– આ રીતે વિદેહક્ષેત્રમાં ઉત્પન્ન વિદ્યમાન વીસ તીર્થંકરોની પાંચમા વલયમાં પૂજા કરવામાં આવી. જેમનું નામ જ ઉત્તમ મંત્ર સ્વરૂપ છે એવા તે તીર્થંકર કોઈ સમયે વિધુ ભાવાર્થાત્ એક, ષટ્ ભાવાર્થાત્ છ અને અભ્ર ભાવાર્થાત્ શૂન્ય આ રીતે એકસો સાઈઠ થઈ શકે છે અને નિત્યકાળની અપેક્ષાએ વીસ હંમેશા વિદ્યમાન રહે છે એવા પૂર્ણાર્ઘ્યથી પૂજિત તે જિન આપણને નિરંતર આત્મલાભ પ્રદાન કરો. ॥૦૫॥૨૧॥

भावार्थ :– इस प्रकार विदेहक्षेत्र में उत्पन्न विद्यमान बीस तीर्थंकरों की पंचम वलय में पूजा की गयी। जिनका नाम ही उत्तम मंत्र स्वरूप है ऐसे वे तीर्थंकर किसी समय अभ्र भावार्थात् शून्य, षट् भावार्थात् छह और विधु भावार्थात् एक इस तरह एक सौ साठ हो सकते हैं और नित्यकाल की अपेक्षा बीस हमेशा विद्यमान रहते हैं । वे जिन पूणार्घ से पूजित हमें निरंतर आत्म लाभ प्रदान करें। ॥०५॥२१॥

षष्ठम वलय परिचय

वलय में अर्घ्य की संख्या : ३७ (श्री आचार्य परमेष्ठी के ३६ गुण के ३६ अर्घ्य और १ समुच्चय अर्घ्य)

वलय का विषय एवं संक्षिप्त परिचय : षष्ठम वलय में हम श्री आचार्य परमेष्ठी के दर्शनाचार, ज्ञानाचार आदि पंचाचार, १२ प्रकार के अंतरंग एवं बहिरंग तप, उत्तम क्षमादि दश धर्म, मन, वचन एवं कायादि तीन गुप्ति और सामायिक आदि षट्-आवश्यक, ऐसे ३६ गुणो को याद करके प्रत्येक गुण की पूजन करते हैं और अंत में एक समुच्चय अर्घ्य चढ़ाते है।

वलय एवं अर्घ्य का दृशिकरण : संघ के नायक श्री आचार्य परमेष्ठी की वीतरागी और शांत मुद्रा, निरंतर आस्वाद में आनेवाले अतीन्द्रिय आनंद का, उनके निश्चय-व्यवहार स्वरूप का दृशिकरण करने का हमने प्रयत्न किया है। इस दृशिकरण के पीछे हमारा उद्देश्य यह है, कि हम सभी साधर्मी मुमुक्षु श्री आचार्य परमेष्ठी के गुणों का भावसहित पूजन करे और श्री आचार्य परमेष्ठी को अपने हृदय में विराजमान करे प्रत्येक अर्घ्य का दृशिकरण हमने अर्घ्य के भाव एवं श्री आचार्य परमेष्ठी के स्वरूप को ध्यान में रखकर किया है।

दर्शनाचार

॥०६॥०१॥

मोहात्ययादाप्तदृश: सपंचविंशातिचारत्यजनादवाप्तां ।
सम्यक्त्वशुद्धिं प्रतिरक्षतोऽर्चे आचार्यवर्यान् निजभावशुद्धान् ।।

ॐ ह्रीं दर्शनाचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

ભાવાર્થ :– મોહનીયના નાશથી જેમને સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થઈ છે, પચ્ચીસ અતિચારોના અભાવથી દર્શનવિશુદ્ધિયુક્ત તથા તેની જ રક્ષામાં તત્પર આચાર્ય પરમેષ્ઠીની શુદ્ધભાવોની પ્રાપ્તિ માટે હું પૂજા કરુ છું. ॥૦૬॥૦૧॥

भावार्थ :– मोहनीय के नाश से जिन्हें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई है, पच्चीस अतीचारों के अभाव से दर्शनविशुद्धि युक्त तथा उसी की रक्षा में तत्पर आचार्यपरमेष्ठी की शुद्ध भावों की प्राप्ति के लिए मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥०१॥

॥०६॥०२॥

विपर्ययादिप्रहृते: पदार्थज्ञानं समासाद्य परात्मनिष्ठं ।
दृढ़प्रतीतिं दधतो मुनींद्रानर्चे स्पृहाध्वंसनपूर्णहर्षान् ।।
ॐ ह्रीं दर्शनाचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

ભાવાર્થ :– સંશય, વિપર્યય અને અનધ્યવસાયના નાશથી આત્મા અને પરપદાર્થ સંબંધી સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી, આપ્ત, આગમ પદાર્થોની દૃઢ પ્રતીતિને ધારણ કરનારા, ઇચ્છાના અભાવથી પૂર્ણ હર્ષિત એવા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરુ છું. ॥૦૬॥૦૨॥

भावार्थ:– संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय के नाश से आत्मा और पर पदार्थ संबंधी सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके आप्त, आगम पदार्थों की दृढ़ प्रतीति को धारण करने वाले, स्पृहा के अभाव से पूर्ण हर्षित ऐसे आचार्य परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥०२॥

चारित्राचार

॥०६॥०३॥

आत्मस्वभावे स्थितिमादधानांश्चारित्रचारुव्रतधौर्यधर्तॄन् ।
द्विधा चरित्रादचलत्वमाप्तानार्यान् यजे सद्गुणरत्नभूषान् ।।

ॐ ह्रीं चारित्राचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

ભાવાર્થ :- આત્મસ્વભાવમાં સ્થિત રહેનારા વિશુદ્ધ ચારિત્રયુક્ત મહાવ્રતના ધારી, બંને પ્રકારના ચારિત્રમાં દૃઢ અને ગુણરૂપી રત્નોથી વિભૂષિત, આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૦૩॥

भावार्थ :- आत्म स्वभाव में स्थित रहने वाले विशुद्ध चारित्र युक्त महाव्रत के धारी दोनों प्रकार के चारित्र में दृढ़ और गुणरूपी रत्नों से विभूषित आचार्य परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥०३॥

तपाचार

॥०६॥०४॥

बाह्यांतरद्वैधतपोऽभियुक्तान् सुदर्शनाद्रिं हसतोऽचलत्वात् ।
गाढावरोहात्मसुखस्वभावान् यजामि भक्त्या मुनिसंघपूज्यान् ।।

ॐ ह्रीं तपआचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

ભાવાર્થ :– બાહ્ય અને અભ્યંતર તપથી યુક્ત, સુમેરુ સમાન અચળ અને અવગાઢ સમ્યક્ રૂપ, સુખસ્વભાવના ધારક એવા મુનિસંઘમાં પૂજ્ય આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૦૪॥

भावार्थ :– बाह्य और आभ्यन्तर तप सुमेरु के समान अचल और अवगाढ़ सम्यक्त्व रूप सुख स्वभाव के धारी ऐसे मुनि समूह में पूज्य आचार्य परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥०४॥

वीर्याचार

॥०६॥०५॥

स्वात्मानुभावोद्भटवीर्यशक्तिदृढाभियोगावनतः प्रशक्तान् ।
परीषहापीडनदुष्टदोषागतौ स्ववीर्यप्रवणान् यजेऽहं ॥

ॐ ह्रीं वीर्याचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

ભાવાર્થ :– પોતાના આત્માના અનુભવથી ઉદભવેલ વીર્ય શક્તિથી દ્રઢ, યોગની રક્ષામાં સાવધાન તથા દુષ્ટ મનુષ્ય, તિર્યંચ, દેવ દ્વારા ઉપસર્ગ થવા છતાં પણ પીડિત નહીં થનારા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૦૫॥

भावार्थ :– अपनी आत्मा के उद्भव से उत्पन्न अंतरंग शक्ति से दृढ़ योग की रक्षा में सावधान दुष्ट मनुष्य, तिर्यंच, देव द्वारा उपसर्ग होने पर भी पीड़ित नहीं होने वाले आचार्यपरमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥०५॥

अनशन

॥०६॥०६॥

चतुर्विधाहारविमोचनेन द्वित्र्यादिघस्रेषु तृषाक्षुधादेः ।
अम्लानभावं दधतस्तपस्थानर्चामि यज्ञे प्रवरावतारान् ।।

ॐ ह्रीं अनशनतपोयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

ભાવાર્થ :– ખાદ્ય, સ્વાદ્ય, લેહ્ય, પેય આ ચારે પ્રકારના આહારોના ત્યાગ સહિત એક, બે, ત્રણ પક્ષ, માસ આદિના ઉપવાસમાં પણ જેઓ ક્ષુધા, તૃષા આદિથી મલિનતાને પ્રાપ્ત નથી થતાં તથા તપમાં સ્થિત રહે છે એવા ઉત્કૃષ્ટ જન્મયુક્ત આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું યજ્ઞમાં પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૦૬॥

भावार्थ :– खाद्य, स्वाद, लेह्य, पेय इन चारों प्रकार के आहारों का त्याग कर एक दो तीन पक्ष, मास आदि के उपवास में भी जो क्षुधा, तृषा आदि से मलिनता को प्राप्त नहीं होते हैं एवं तप में स्थित रहते हैं ऐसे उत्कृष्ट जन्मयुक्त आचार्य परमेष्ठी की मैं यज्ञ में पूजा करता हूँ। ॥०६॥०६॥

अवमौदर्य

॥०६॥०७॥

त्रिभागभोज्ये क्षितिवेदवह्निग्रासाशने तुष्टिमतो मुनींद्रान् ।
ध्यानावधानाद्यभिवृद्धिपुष्टान् निद्रालसौ जेतुमितान् यजामि ।।

ॐ ह्रीं अवमोदर्यतपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ત્રીજા ભાગના ભોજનમાં પણ એક, ચાર, ત્રણ, આદિ ગ્રાસમાત્ર ભોજનથી સંતુષ્ટ, સમર્થ એવા ધારણ કરવાવાળા, ધ્યાન અને અવગાહનની વૃદ્ધિથી પુષ્ટ તથા નિદ્રા અને આળસને જિતવામાં સમર્થ, એવા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૦૭॥

भावार्थ :– तीन भाग मात्र भोजन में भी एक, चार, तीन, आदि ग्रास मात्र भोजन में संतोष धारण करने वाले ध्यान और अवधारणा की वृद्धि से पुष्ट तथा निद्रा और आलस को जीतने में समर्थ ऐसे आचार्य परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥०७॥

व्रत्तिपरिसंख्यान

॥०६॥०८॥

श्रृंगाग्रलग्नं वसनं नवीनं रक्तं निरीक्ष्यैव भुजिं करिष्ये ।
इत्यादिवृत्तौ निरतानलक्ष्यभावान् मुनींद्रानहमर्चयामि ।।

ॐ ह्रीं वृत्तिपरिसंख्यातपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– 'ગાયના શીંગડાના અગ્ર ભાગમાં લાગેલા નવીન લાલ વસ્ત્રને જોઈને ભોજન કરીશ.' ઈત્યાદિ પ્રકારની અટપટી વૃત્તિના લક્ષનો જેમનો અભિપ્રાય છે એવા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૦૮॥

भावार्थ :– गौ के सींग के अग्र भाग में लगे नवीन लाल वस्त्र को देखकर भोजन करूँगा इस प्रकार की अटपटी विधि में प्रवीण एवं अलक्षित है अभिप्राय जिनका ऐसे आचार्य परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥०८॥

रसपरित्याग

॥०६॥०९॥

मिष्टाज्यदुग्धादिरसापवृत्तेः परस्य लक्ष्येऽप्यवभासनेन।
त्यागे मुदं चेष्टितमत्ययोगाद् धर्तॄन् गणेशाधिपतीन् यजामि ॥

ॐ ह्रीं रस-परित्यागतपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– મિષ્ટ, લવણ, દૂધ, ઘી આદિ રસોનું નિત્ય પરિવર્તન કરનારા, તેના ત્યાગની અન્યને જાણ નહીં થવા દેનારા તથા ચેષ્ટા વડે ત્યાગની પ્રસન્નતા નહીં દર્શાવનારા આચાર્યોની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૦૯॥

भावार्थ :– मिष्ट, लवण, दुग्ध, घृत, आदि रसों का नित्य परिवर्तन करने वाले, दूसरों को अवभासन नहीं कराने वाले भावार्थात् अपने त्याग को अन्य को नहीं बताने वाले तथा त्याग में आनंद है उसे चेष्टा से भी नहीं बताने वाले आचार्यों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥०९॥

विविक्तशय्यासन

॥०६॥१०॥

दरीषु भूध्रोपरिषु श्मशाने दुर्गे स्थले शून्यगृहावलीषु ।
शय्यासने योग्यदृढासनेन संधार्यमाणान् परिपूजयामि ।।
ॐ ह्रीं विविक्तशय्यासनतपोभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– પર્વતની ગુફાઓમાં, પર્વતની ઉપર, સ્મશાનમાં અન્ય વિકળ સ્થાનોમાં તથા શૂન્ય ગૃહાદિની પંક્તિમાં યોગ્ય દૃઢ આસનથી શય્યા આસન ધારણ કરનારા આચાર્ય પરમેષ્ઠીઓની હું ભક્તિભાવથી પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૧૦॥

भावार्थ :– जो पर्वत की गुफाओं में पर्वत के ऊपर, श्मशान में, अन्य विकल स्थलों में तथा शून्य गृहादि की पंक्ति में, योग्य दृढ़ आसन से शय्या आसन धारण करने वाले आचार्य परमेष्ठियों की मैं भक्तिभाव से पूजा करता हूँ। ॥०६॥१०॥

कायक्लेश

॥०६॥११॥

ग्रीष्मे महीध्रे सरितां तटेषु शरत्सु वर्षासु चतुष्पथेषु ।
योगं दधानान् तनुकष्टदाने प्रीतान् मुनींद्रान् चरुभिः पृणेमि ॥

ॐ ह्रीं कायक्लेशतपोभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

ભાવાર્થ :– ગ્રીષ્મઋતુમાં પર્વતના શિખર ઉપર, શરદ ઋતુમાં નદી કિનારે, વર્ષાઋતુમાં ચોરાહા પર યોગ ધારણ કરનારા શરીરને કષ્ટ દેવામાં પ્રસન્ન એવા આચાર્યોની હું નૈવેદ્યથી પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૧૧॥

भावार्थ :– ग्रीष्म ऋतु में पर्वत के उपरिभाग में, शरद ऋतु में नदी के तट पर, वर्षा ऋतु में चौराहे पर, योग धारण करने वाले शरीर को कष्ट देने में प्रसन्न ऐसे आचार्यों की मैं नैवेद्य से पूजा करता हूँ। ॥०६॥११॥

प्रायश्चित

॥०६॥१२॥

संभाव्य दोषानुनयं गुरुभ्य आलोचनापूर्वमहर्निशं ये ।
तच्छुद्धिमात्रे निपुणा यतीशा संत्वर्घदानेन मुदंचितार: ।।

ॐ ह्रीं प्रायश्चित्ततपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- લાગેલા દોષોની યથાવત્ ગુરુ પાસે યથાવત આલોચના કરીને, રાત-દિવસ જેઓ પોતાના વ્રતોની શુદ્ધિ કરવામાં નિપુણ છે એવા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું., તેઓ મારા પર પ્રસન્ન થાઓ. ॥૦૬॥૧૨॥

भावार्थ :- लगे हुए दोषों की यथावत गुरु से आलोचना करके रात-दिन जो अपने व्रतों की शुद्धि करने में निपुण हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। वे मुझ पर प्रसन्न हो। ॥०६॥१२॥

विनय

॥०६॥१३॥

सद्दर्शनज्ञानचरित्ररूपप्रभेदतश्चात्मगुणेषु पंच–
पूज्येष्वशल्यं विनयं दधानाः मां पांतु यज्ञेऽर्चनया पटिष्ठाः ॥

ॐ ह्रीं विनयतपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્રરૂપ ભેદવાળા આત્મગુણોમાં અને પંચ પરમેષ્ઠીમાં નિષ્કપટ વિનયને ધારણ કરવામાં પ્રવીણ આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું આ યજ્ઞમાં પૂજા કરું છું.,તેઓ મારી રક્ષા કરે. ॥૦૬॥૧૩॥

भावार्थ :– दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप भेद वाले आत्मगुणों में और पंचपरमेष्ठी में निष्कपट विनय को धारण करने में प्रवीण आचार्य परमेष्ठियों की मैं इस यज्ञ में पूजा करता हूँ। वे मेरी रक्षा करें। ॥०६॥१३॥

वैयावृत्ति

॥०६॥१४॥

दिक्संख्यसंघे खलु वातपित्तकफादिरोगक्लमजार्तिसंधौ ।
दयार्द्रचित्तान्मुनिपेंगितज्ञांस्तद्-दुःखहंतृनहमाश्रयामि ।।
ॐ ह्रीं वैय्यावृत्त्यतपोभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– આચાર્ય, ઉપાધ્યાય, તપસ્વી, શૈક્ષ્ય, ગ્લાન આદિ દશ પ્રકારના સંઘવાળા મુનિઓમાં વાત્, પિત્ ને કફ આદિ રોગ તથા ખેદથી ઉપજેલી પીડા માટે દયાથી જેમનું ચિત્ત ભીંજાયેલું છે તથા તેમના કારણો જાણીને દુઃખ દૂર કરે છે એવા આચાર્ય પરમેષ્ઠીના શરણને હું પ્રાપ્ત થાઉં છું. ॥૦૬॥૧૪॥

भावार्थ :– आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लानादि दश प्रकार के संघ वाले मुनियों में वात, पित्त, कफ आदि रोग तथा खेद से उत्पन्न पीड़ा होने पर, दया से भीगा है चित्त जिनका तथा मुनियों के अभिप्राय (कारण) को जानकर दुःख को दूर करने वाले आचार्य परमेष्ठी की मैं शरण को प्राप्त होता हूँ। ॥०६॥१४॥

॥०६॥१५॥

श्रुतस्य बोधं स्वपरार्थयोर्वा स्वाध्याययोगादवभासमानान् ।
आम्नायपृच्छादिषु दत्तचित्तान् संपूजयामोऽर्घविधानमुख्यैः ।।

ॐ ह्रीं स्वाध्यायतपोभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- જેઓ પોતાના અને પરના માટે સ્વાધ્યાય વડે શાસ્ત્રોના ભાવાર્થ પ્રકાશિત કરે છે તથા આમ્નાય અને પ્રશ્નો માટે સાવધાન રહે છે એવા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની આપણે અર્ઘ આદિ વિધાનથી પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૬॥૧૫॥

भावार्थ :- शास्त्र के भावार्थ को अपने और पर के लिए स्वाध्याय के माध्यम से प्रकाशित करने वाले एवं आम्नाय और प्रश्न आदि में मन लगाने वाले ऐसे आचार्य परमेष्ठी की हम अर्घ आदि विधान से पूजा करते हैं। ॥०६॥१५॥

व्युत्सर्ग

॥०६॥१६॥

विनश्वरे देहकृते ममत्वत्यागेन कायोत्सृजतोपि पद्मा - सनादियोगानवधार्य चात्मसंपत्सु संस्थानहमंचयामि ।।

ॐ ह्रीं व्युत्सर्गतपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– વિનશ્વરદેહમાં મમત્વના ત્યાગથી શરીરને છોડતા થકા પણ પદ્માસન આદિ યોગને ધારણ કરીને આત્મસ્વરૂપ સંપદામાં લીન રહેનારા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૧૬॥

भावार्थ :– विनश्वर देह में ममत्व के त्याग से शरीर को छोड़ते हुए भी पद्मासन आदि योग को धारण कर आत्मस्वरूप संपदा में लीन रहने वाले आचार्य परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥१६॥

ध्यान

॥०६॥१७॥

येषां मनोऽहर्निशमार्त्तरौद्रभूमेरनंगीकरणाद्धि धर्म्ये ।
शुक्लोपकंठे परिवर्तमानं तानाश्रये बिंबविधानयज्ञे ।।

ॐ ह्रीं ध्यानावलंबननिरताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના મનમાં રાત-દિવસ આર્ત-રૌદ્રધ્યાન નથી આવતા તથા ધર્મ ને શુક્લધ્યાનમાં સંલગ્ન રહે છે એવા આચાર્ય પરમેષ્ઠીનો હું આ બિંબ વિધાન યજ્ઞમાં આશ્રય લઉં છું. ॥૦૬॥૧૭॥

भावार्थ :– जिनके मन में रात-दिन आर्त्त-रौद्रध्यान नहीं आते हैं तथा धर्म्य और शुक्लध्यान में संलग्न रहते हैं मैं उन आचार्य परमेष्ठी का इस बिंब विधान यज्ञ में आश्रय लेता हूँ। ॥०६॥१७॥

उत्तम क्षमा

॥०६॥१८॥

येषां भ्रुवःक्षेपणमात्रतोऽपि शक्रस्य शक्रत्वविघातनं स्यात् ।
एवंविधा अप्युदितक्रुधार्तौ क्षमां भजंते ननु तान् महामि ।।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमापरमधर्मधारकाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :–જેમની આંખના પલકારમાત્રથી ઈન્દ્રનું ઈન્દ્રાસનપણ ડગી જાય એટલી શક્તિથી સંપન્ન હોવા છતાં ક્રોધને બદલે ક્ષમાભાવ ધારણ કરનારા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૧૮॥

भावार्थ :– जिनकी भौंह के क्षेपण मात्र से ही इन्द्र का इन्द्रपना बिगड़ जाए ऐसी शक्ति से सम्पन्न होने पर भी उत्पन्न हुयी क्रोध रूपी आर्ति (पीड़ा) में क्षमाभाव धारण करने वाले आचार्य परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥१८॥

उत्तम मार्दव

॥०६॥१९॥

न जातिलाभैश्यविदंगरूपमदाः कदाचिज्जननं प्रयांति ।
येषां मृदिम्ना गुरुणार्द्रचित्तास्ते दद्युरीशाः स्तवनाच्छिवं मे ।।

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मधुरंधराचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમને જાતિ, લાભ, ઐશ્વર્ય, જ્ઞાન, રૂપ, શરીર આદિનો મદ ક્યારેય પણ ઉત્પન્ન થતો નથી તથા કોમળતાથી ભીંજાયેલું છે મન જેમનું, તેવા મહાન સમર્થ આચાર્ય પરમેષ્ઠીનું હું સ્તવન કરું છું. તેઓ મને મોક્ષ પ્રદાન કરે. ॥૦૬॥૧૯॥

भावार्थ :– जिनको जाति, लाभ, ऐश्वर्य, ज्ञान, रूप, शरीर आदि का मद कभी भी उत्पन्न नहीं होता है एवं मृदुता से भीगा है मन जिनका ऐसे महान समर्थ आचार्य परमेष्ठी का मैं स्तवन करता हूँ। वे मुझे मोक्ष प्रदान करें। ॥०६॥१९॥

उत्तम आर्जव

॥०६॥२०॥

सर्वत्र निश्छद्मदशासु वल्लीप्रतानमारोहति चित्तभूमौ।
तपोयमोद्भूतफलैरबंध्या शाम्यांबुसिक्ता तु नमोऽस्तु तेभ्य:॥

ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मपरिपुष्टाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम्।

ભાવાર્થ :– જેમની નિષ્કપટ ચિત્તરૂપી ભૂમિમાં ધર્મરૂપી વેલ પ્રતિસમય વિસ્તારને પ્રાપ્ત થાય છે, જે તપ-સંયમથી ઉત્પન્ન સમતાભાવરૂપી જળથી સિંચવામાં આવી છે, જે સ્વર્ગ-મોક્ષરૂપી ફળને આપે છે તેવા ઉત્તમ આર્જવ ધર્મથી યુક્ત આચાર્ય પરમેષ્ઠીને હું નમસ્કાર કરું છું. ॥૦૬॥૨૦॥

भावार्थ :– जिनके निष्कपट चित्तरूपी भूमि में धर्मरूपी बेल प्रति समय विस्तार को प्राप्त होती है, जो तप संयम से उत्पन्न शमभाव रूपी जल से सींची गयी है, स्वर्ग मोक्ष रूपी फल को देती है। ऐसे उत्तम आर्जव धर्म से युक्त आचार्य परमेष्ठी को नमस्कार हो। ॥०६॥२०॥

उत्तम सत्य

॥०६॥२१॥

भाषासमित्या भयलोभमोहमूलंकषत्वादनुभूतया च ।
हितं मितं भाषयतां मुनीनां पादारविंदद्वयमर्चयामि ।।

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मप्रतिष्ठिताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ભય, લોભ અને મોહનો મૂળથી વિઘાત કરીને અનુભવમાં આવેલી ભાષાસમિતિથી હિત, મિત ભાષણ કરનારા મુનિઓના યુગલ ચરણારવિંદની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૨૧॥

भावार्थ :– भय, लोभ, और मोह का मूल से विघात करके अनुभव में आयी भाषासमिति से हित-मित भाषण करने वाले मुनियों के युगल चरणारविन्द की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥२१॥

उत्तम शौच

॥०६॥२२॥

न लोभरक्षोऽभ्युदयो न तृष्णागृद्धी पिशाच्यौ सविधं सदेतः ।
तस्मात् शुचित्वात्मविभा चकास्ति येषां तु पादस्थलमर्चयेऽहं ॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मधारकाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમને લોભરૂપી રાક્ષસનો ઉદય નથી, તૃષ્ણા તથા ગૃદ્ધિરૂપી પિશાચિની સદાય દૂર રહે છે કે જેથી પવિત્રતાની કાંતિથી જેમનો આત્મા શોભાયમાન છે, તેમના ચરણની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૨૨॥

भावार्थ :– जिनके लोभरूपी राक्षस का उदय नहीं है, तृष्णा तथा गृद्धिरूपी पिशाचिनी सदा दूर रहती है, इसलिए शुचिपने की कांति से जिनकी आत्मा शोभायमान है उनकी चरण चौकी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥२२॥

उत्तम संयम

॥०६॥२३॥

मनोवच:कायभिदानुमौदादिभंगतश्चेंद्रियजंतुरक्षा ।
वर्वर्ति सत्संयमबुद्धिधीरास्तेषां सपर्याविधिमाचरामि ।।

ॐ ह्रीं उत्तमद्विविधसंयमपात्राचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- જેમને મન, વચન, કાયા તથા કૃત-કારિત-અનુમોદના આદિ દ્વારા ઇન્દ્રિયરક્ષા ને પ્રાણીરક્ષા વિદ્યમાન છે તથા સમીચીન સંયમ બુદ્ધિમાં ધીર છે એવા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું વિધિપૂર્વક પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૨૩॥

भावार्थ :- जिनके मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदना आदि के द्वारा इन्द्रिय रक्षा और प्राणी रक्षा विद्यमान है तथा समीचीन संयम बुद्धि में धीर हैं उन आचार्य परमेष्ठी की मैं विधि पूर्वक पूजा करता हूँ। ॥०६॥२३॥

उत्तम तप

॥०६॥२४॥

तपोविभूषा हृदयं बिभर्ति येषां महाघोरतपोगुणाग्रयाः
इंद्रादिधैर्यच्च्यवनं स्वतस्त्यं तया युता एव शिवैषिणः स्युः ।।

ॐ ह्रीं उत्तमतपोऽतिशयधर्मसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમનું તપરૂપી આભૂષણ હૃદયને પુષ્ટ કરનારું છે, જેઓ મહા ઘોર તપગુણમાં અગ્રણી છે, જેમના ઘોર તપશ્ચરણથી ઇન્દ્રોનું ધૈર્ય સ્વતઃ ચ્યુત થઈ જાય છે એવા તપસ્વી આચાર્ય જ મોક્ષમહેલનું અન્વેષણ કરનારા હોય છે. ॥૦૬॥૨૪॥

भावार्थ :– जिनका तपरूपी आभूषण हृदय को पुष्ट करने वाला है, जो महान घोर तप गुण में अग्रणी हैं, जिनके घोर तपश्चरण से इन्द्रों का धैर्य स्वतः च्युत होता है ऐसे तपस्वी आचार्य ही मोक्ष महल का अन्वेषण करने वाले होते हैं। ॥०६॥२४॥

उत्तम त्याग

॥०६॥२५॥

समस्तजंतुष्वभयं परार्थसंपत्करी ज्ञानसुदत्तिरिष्टा ।
धर्मौषधीशा अपि ते मुनीशास्त्यागेश्वरा द्रांतु मनोमलानि ।।

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मप्रवीणाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– પ્રાણીમાત્રને અભયદાન આપનારા અને જેમનું જ્ઞાનદાન પરને સંપત્તિ પ્રદાન કરનારું છે, ધર્મરૂપી ઔષધિ અને ત્યાગભાવનાના સ્વામી એવા આચાર્ય પરમેષ્ઠી મારા મનના મળને દૂર કરો. ॥૦૬॥૨૫॥

भावार्थ :– प्राणी मात्र को अभयदान करने वाले और जिनका ज्ञानदान पर को संपत्ति प्रदान करने वाला है । धर्मरूपी औषधी एवं त्याग भावना के स्वामी ऐसे आचार्य परमेष्ठी मेंरे मन के मल को दूर करें। ॥०६॥२५॥

उत्तम आकिंचन्य

॥०६॥२६॥

आत्मस्वभावादपरे पदार्था न मेऽथवाऽहं न परस्य बुद्धिः ।
येषामिति प्राणयति प्रमाणं तेषां पदार्चा करवाणि नित्यं ।।

ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– આત્મસ્વભાવ સિવાય અન્ય પદાર્થ મારા નથી અને હું તેમનો નથી, આ પ્રકારે જેમની બુદ્ધિ પ્રમાણથી પ્રમાણિત છે, તેમના ચરણારવિંદની હું નિત્ય પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૨૬॥

भावार्थ :– आत्म स्वभाव के अलावा अन्य पदार्थ मेरे नहीं हैं और मैं उनका नहीं हूँ। इस प्रकार जिनकी बुद्धि प्रमाण से प्रमाणित है, उनके चरणारविंद की मैं नित्य पूजा करता हूँ। ॥०६॥२६॥

उत्तम ब्रम्हचर्य

॥०६॥२७॥

रंभोर्वशी यन्मनसो विकारं कर्तुं न शक्ताऽत्मगुणानुभावात् ।
शीलेशतामादधुरुत्तमार्थां यजामि तानार्यवरान् मुनींद्रान् ।।
ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यमहानुभावधर्ममहनीयाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– આત્મગુણના પ્રભાવથી રંભા અને ઉર્વશી જેવી નૃત્યાંગનાઓ પણ જેમના મનમાં વિકાર ઉત્પન્ન કરી શકતી નથી એવા શીલને ધારણ કરનારા આચાર્ય મુનીન્દ્રની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૨૭॥

भावार्थ :– आत्मगुण के प्रभाव से रंभा और उर्वशी जैसी नृत्यांगनाएँ भी जिनके मन में विकार उत्पन्न नहीं कर सकीं ऐसे शील को धारण करने वाले आचार्य मुनीन्द्र की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥२७॥

मन गुप्ति

॥०६॥२८॥

संरोधनान्मानसभंगवृत्तेः विकल्पसंकल्पपरिक्षयाच्च ।
शुद्धोपयोगं भजतां मुनीनां गुप्तिं प्रशस्यात्र यजामहे तान् ।।

ॐ ह्रीं मनोगुप्तिसंपन्नाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- માનસિક વિભાવવૃત્તિનું નિરોધ કરી સંકલ્પ-વિકલ્પથી મુક્ત શુદ્ધોપયોગને પ્રાપ્ત મુનિઓની મનોગુપ્તિની પ્રશંસા કરીને, તે આચાર્યોની હું પૂજા કરું છું. ॥०६॥२८॥

भावार्थ :- मानसिक विभाव वृत्ति का निरोध कर संकल्प-विकल्प से मुक्त शुद्धोपयोग को प्राप्त मुनियों की मनोगुप्ति की प्रशंसा करके उन आचार्यों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥२८॥

वचन गुप्ति

॥०६॥२९॥

धर्मोपदेशात्तदृते कथाया अभाषणात् संभ्रमतादिदोषैः।
वियोजनाद् ध्यानसुधैकपानाद् गुप्तिं वचोगामटितान् यजामि॥

ॐ ह्रीं वचनगुप्तिधारकाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम्।

ભાવાર્થ :– ધર્મોપદેશને છોડીને અન્યકથા નહીં કરનારા તથા સંશય આદિ દોષોથી રહિત જેઓ ધ્યાનરૂપી અમૃતના પાનથી વચનગુપ્તિને પ્રાપ્ત છે તે આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૬॥૨૯॥

भावार्थ :– धर्मोपदेश को छोड़कर अन्य कथा नहीं करने वाले तथा संशय आदि दोषों से रहित जो ध्यानरूपी अमृत के पान से वचनगुप्ति को प्राप्त हैं उन आचार्यपरमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥२९॥

काय गुप्ति

॥०६॥३०॥

वन्या: समिद्धी रचितां दृषत्सूत्कीर्णामिवांगप्रतिमां निरीक्ष्य ।
कंडूतिनांगानि लिहंति येषां धाराग्रमर्घेण यजामि सम्यक् ।।

ॐ ह्रीं कायगुप्तिसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમની પદ્માસન આદિ પ્રતિમા (મુદ્રા) જોઈને જંગલના પશુ હરણ આદિ 'આ કાષ્ઠની બનેલી છે અથવાપત્થરમાં કોતરેલી છે' એમ સમજીને ખંજવાળે છે તથા તેમનું શરીર ચાટે છે એવા આચાર્યો સમક્ષ અમે અર્ઘ્યથી પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૬॥૩૦॥

भावार्थ :– जिनकी पद्मासन आदि प्रतिमा (मुद्रा) को देखकर जंगल के पशु हरिण आदि यह काष्ठ की बनी है अथवा पत्थर में उकेरी है ऐसा समझकर अपनी खाज खुजाते हैं एवं उनकी देह चाटते हैं उन आचार्यों की अग्र भूमि में हम अर्घ से पूजा करते हैं। ॥०६॥३०॥

सामायिक

॥०६॥३१॥

सामायिकं जाहति नोपदिष्टं त्रिकालजातं ननु सर्वकाले ।
रागक्रुधोर्मूलनिवारणेन यजामि चावश्यककर्मधातॄन् ।।
ॐ ह्रीं सामायिकावश्यककर्मधारिभ्य आचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ પૂર્વાચાર્યો દ્વારા ઉપદિષ્ટ ત્રણેકાળમાં કરવામાં આવતા સામાયિકને ક્યારેય પણ છોડતા નથી અને રાગ-દ્વેષને જડથી નષ્ટ કરે છે એવા આવશ્યક કર્મને ધારણ કરનારા આચાર્ય પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥०६॥३१॥

भावार्थ :– जो पूर्वाचार्यों द्वारा उपदिष्ट तीनों कालों में की जाने वाली सामायिक को कभी नहीं छोड़ते और राग-द्वेष को जड़ से नष्ट करते हैं ऐसे आवश्यक कर्म को धारण करने वाले आचार्य परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०६॥३१॥

वंदना

॥०६॥३२॥

सिद्धश्रुतिं देवगुरुश्रुतानां स्मृतिं विधायापि परोक्षजातं ।
सद्-वंदनं नित्यमपार्थहानं कुर्वंति तेषां चरणौ यजामि ॥

ॐ ह्रीं वंदनावश्यकनिरताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ સિદ્ધનું તથા દેવ, શાસ્ત્ર, ગુરુનું સ્મરણ કરીને,નિત્ય પરોક્ષ વંદના કરીને, પાપનો નાશ કરે છે તે આચાર્ય પરમેષ્ઠીની અમે પૂજા કરીએ છે તે. ॥૦૬॥૩૨॥

भावार्थ :– जो सिद्धों तथा देव, शास्त्र, गुरुओं का स्मरण करके नित्य परोक्ष वन्दना करके पापों की हानि करते हैं उन आचार्य परमेष्ठी की हम पूजा करते हैं। ॥०६॥३२॥

स्तुति

॥०६॥३३॥

तेषां गुणानां स्तवनं मुनींद्रा वचोभिरुद्धूतमनो मलांकैः ।
कुर्वंति चावश्यकमेव यस्मात् पुष्पांजलिं तत्पुरतः क्षिपामि ।।

ॐ ह्रीं स्तवनावश्यकसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- જેઓ દેવ, શાસ્ત્ર, ગુરુ અને સિદ્ધોના ગુણોની નિર્મળ મન-વચનથી સ્તુતિ કરે છે, સ્તવન આવશ્યકમાં નિરત, તે આચાર્ય પરમેષ્ઠી આગળ અમે પુષ્પાંજલી સમર્પિત કરીએ છીએ. ॥૦૬॥૩૩॥

भावार्थ :- जो देव, शास्त्र, गुरु और सिद्धों के गुणों की निर्मल मन, वचन से स्तुति करते हैं स्तवन आवश्यक में निरत उन आचार्य परमेष्ठी के अग्रभाग में हम पुष्पांजलि समर्पित करते हैं। ॥०६॥३३॥

प्रतिक्रमण

॥०६॥३४॥

मलोत्सृजादौ क्वचनाप्तदोषं प्रतिक्रमेणापनुदंति वृद्धं ।
साधुं समुद्दिश्य निशादिवीर्यदोषान् जहत्यर्चनया धिनोमि ।।
ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकनिरताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ મળ, ઉત્સર્ગ આદિમાં ક્યારેક થવાવાળા દોષને પ્રતિક્રમણથી દૂર કરે છે અને વૃદ્ધ સાધુઓને ઉદ્દેશીને રાત-દિવસ સંબંધી દોષોને ત્યાગે છે, તે આચાર્ય પરમેષ્ઠીને અમે પૂજનની વિધિથી પ્રસન્ન કરીએ છીએ. ॥૦૬॥૩૪॥

भावार्थ :– जो मल उत्सर्ग आदि में किसी समय होने वाले दोष को प्रतिक्रमण से दूर करते हैं एवं वृद्ध साधुओं को उद्देश्य करके रात-दिन संबंधी दोषों को त्यागते हैं उन आचार्य परमेष्ठी को हम पूजन की विधि से प्रसन्न करते हैं। ॥०६॥३४॥

स्वाध्याय

॥०६॥३५॥

स्वो नाम चात्माऽध्ययते यदर्थः
स्वाध्याययुक्तो निजभानुबुद्धः ।
श्रुतस्य चिंताऽपि तदर्थबुद्धि
स्तामाश्रये स्वाभिमतार्थसिद्धये ।।

ॐ ह्रीं स्वाध्यायावश्यककर्मनिरताचार्यपरमेषिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– સ્વ નામ આત્માનું છે કે જેનાથી તેનું ધ્યાન થાય છે, તેને સર્વજ્ઞદેવે સ્વાધ્યાય શબ્દથી નિરુક્ત કર્યો છે અને શાસ્ત્રનું ચિંતન પણ આત્મતત્ત્વની ઉપલબ્ધિ માટે કરવામાં આવે છે. આ ઇષ્ટ પ્રયોજનની સિદ્ધિ માટે હું સ્વાધ્યાય નિરત બુદ્ધિવાળા આચાર્ય પરમેષ્ઠીના શરણને પ્રાપ્ત થાઉં છું. ॥૦૬॥૩૫॥

भावार्थ :– स्वनाम आत्मा का है जिससे उसका ध्यान होता है उसे सर्वज्ञदेव ने स्वाध्याय शब्द से निरुक्त किया है और शास्त्र का चिंतन भी आत्मतत्त्व की उपलब्धि के लिये किया जाता है, इस इष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिए मैं स्वाध्याय निरत बुद्धि वाले आचार्य परमेष्ठी की शरण को प्राप्त होता हूँ। ॥०६॥३५॥

व्युत्सर्ग

॥०६॥३६॥

भुजप्रलंबादि विधिज्ञतायाः पौरस्त्यमाप्याधिगमं वहंतः।
व्युत्सर्गमात्रा वशिनः कृतार्था अस्मिन् मखे यांतु विधिज्ञपूजां॥

ॐ ह्रीं व्युत्सर्गावश्यकनिरताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ભુજ પ્રલંબન આદિ વિધિના જાણનારાઓમાં અગ્રણી, જ્ઞાનના ધારક તથા કાયોત્સર્ગ દ્વારા પોતાના પ્રયોજનને સિદ્ધ કરનારા આચાર્ય પરમેષ્ઠી આ યજ્ઞની વિધિના જ્ઞાતાઓ દ્વારા પૂજાને પ્રાપ્ત થાય છે. ॥૦૬॥૩૬॥

भावार्थ :– भुज प्रलंबन आदि विधि के जानने वालों में अग्रणी, ज्ञान के धारक तथा कायोत्सर्ग के द्वारा अपने प्रयोजन को सिद्ध करने वाले आचार्य परमेष्ठी इस यज्ञ की विधि के ज्ञाताओं द्वारा पूजा को प्राप्त होते हैं। ॥०६॥३६॥

सामूहिक अर्घ

॥०६॥३७॥

गुणोद्देशादेषा प्रणिधिवशतोऽनंतगुणिनां
कृता ह्याचार्याणामपचितिरियं भावबहुला ।
समस्तान् संस्मृत्य श्रमणमुकुटानर्घमलघु
प्रपूर्तं संदृब्धं मम मखविधिं पूरयतु वै ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् पूजार्हप्रतिष्ठोद्यापने मुख्यषष्ठवलयोन्मुद्रित-आचार्यपरमेष्ठिभ्यस्तद्गुणेभ्यश्च पूर्णार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ગુણોની પ્રાપ્તિના ઉદ્દેશ્યથી, એકાગ્રતાપૂર્વક, અનંત ગુણયુક્ત મુનિઓમાં શિરોમણિ એવા સમસ્ત આચાર્યોની સ્મરણ અને ભાવોથી કરેલી આ પૂજાનો આ પરિપૂર્ણ અર્ઘ્ય મારી યજ્ઞની વિધિને પૂરી કરે. ॥૦૬॥૩૭॥

भावार्थ :– गुणों की प्राप्ति के उद्देश्य से, एकाग्रता पूर्वक अनंतगुण युक्त मुनियों में शिरोमणि ऐसे समस्त आचार्यों का स्मरण एवं भावों द्वारा पूजा का यह परिपूर्ण अर्घ मेरी यज्ञ की विधि को पूरा करे। ॥०६॥३७॥

सप्तम वलय परिचय

वलय में अर्घ्य की संख्या : २६ (श्री उपाध्याय परमेष्ठी के २५ गुण के २५ अर्घ्य और १ समुच्चय अर्घ्य)

वलय का विषय एवं संक्षिप्त परिचय : सप्तम वलय में हम श्री उपाध्याय परमेष्ठी के आचारांग, सूत्रकृतांग आदि ११ अंग एवं उत्पादपूर्व,अग्रायणीयपूर्व आदि १४ पूर्व ऐसे २५ गुणो को याद करके प्रत्येक गुण की पूजन करते हैं और अंत मे एक समुच्चय अर्घ्य चढ़ाते है।

वलय एवं अर्घ्य का दृशिकरण : श्री उपाध्याय परमेष्ठी अंग और पूर्वके पाठी होते है। पठन एवं पाठन ही श्री उपाध्याय परमेष्ठी का मुख्य गुण है। यह वलय के अर्घ्यका दृशिकरण हमने श्रुतस्कंधकी रचना दिखाकर, श्री उपाध्याय परमेष्ठीके एक एक गुणकी भावसहित पूजन करते समय, प्रत्येक अंग एवं पूर्वके वस्तुविषय और श्लोककी संख्या बतायी है ताकि हम पूजन करते समय श्री उपाध्याय परमेष्ठीके ज्ञानकी गहनताकी महिमा भी करे और श्री उपाध्याय परमेष्ठी को अपने भावो में स्थापित कर, सम्यक्त्व प्राप्ति की भावना करे।

आचारांग

॥०७॥०१॥

आचारांगं प्रथमं सागारमुनीशचरणभेदकथं ।
अष्टादशसहस्रपदं यजामि सर्वोपकारसिद्धयर्थं ।।

ॐ ह्रीं अष्टादशसहस्रपदकाचारांगाय अर्घम्

ભાવાર્થ :– પહેલાં શ્રાવક અને મુનિઓના આચરણના ભેદને દર્શાવનારા અઢાર હજાર પદયુક્ત આચારાંગની બધાના ઉપકારની સિદ્ધિ માટે હું પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૦૧॥

भावार्थ :– प्रथम श्रावक और मुनियों के आचरण के भेद को कहने वाले अठारह हजार पद युक्त आचारांग की सबके उपकार की सिद्धि के लिए मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥०१॥

सूत्रकृतांग

॥०७॥०२॥

सूत्रकृतांगं द्वितयं षट्त्रिंशत्सहस्रपदकृतमहितं ।
स्वपरसमयविधानं पाठकपठितं यजामि पूजार्हं ।।

ॐ ह्रीं षट्त्रिशतहस्रसंयुक्तसूत्रकृतांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– છત્રીસ હજાર પદ સંયુક્ત સ્વ અને પર સમયના ભેદયુક્ત ઉપાધ્યાયો દ્વારા ભણાયેલું અને પૂજાને યોગ્ય બીજા સૂત્રકૃતાંગની હું પૂજા કરુ છું. ॥૦૭॥૦૨॥

भावार्थ :– छत्तीस हजार पद संयुक्त स्व और पर समय के भेद युक्त उपाध्यायों द्वारा पठित एवं पूजा के योग्य दूसरे सूत्रकृत अंग की मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥०२॥

स्थानांग

॥०७॥०३॥

स्थानांगं द्विकचत्वारिंशत्पदकं षडर्थदशसरणे: ।
एकादशभेदयुज: कथकं परिपूजये वसुभि: ।।

ॐ ह्रीं द्विचत्वारिंशत्पदसंयुक्तस्थानांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ૪૨ હજાર પદયુક્ત છ: પદાર્થના અગિયાર ભેદ સહિત દશ માર્ગને દર્શાવનારા સ્થાનાંગની હું અષ્ટદ્રવ્યથી પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૦૩॥

भावार्थ :– ब्यालीस हजार पद युक्त छ: पदार्थों के ग्यारह भेद सहित दश मार्ग के कहने वाले स्थानांग की मैं अष्टद्रव्य से पूजा करता हूँ। ॥०७॥०३॥

॥०७॥०४॥

समवायांगं लक्षैकचतुरितषष्टिसहस्रपदविशदं ।
द्रव्यादिचतुष्केन तु साम्योक्तिर्यत्र पूजये विधिना ।।

ॐ ह्रीं एकलक्षषष्टिसहस्रपदन्यासाय समवायांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– એક લાખ ચોસઠ હજાર પદોથી વિષદ્ તથા જેમાં દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષા સામ્યતાનું વર્ણન છે એવા સમવાયા અંગની હું વિધિપૂર્વક પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૦૪॥

भावार्थ :– एक लाख चौसठ हजार पदों से विशद तथा जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों की अपेक्षा साम्यता का वर्णन है ऐसे समवायांग की मैं विधिपूर्वक पूजा करता हूँ। ॥०७॥०४॥

॥०७॥०५॥

व्याख्याप्रज्ञप्त्यंगं द्विलक्षसहिताष्टविंशतिसहस्त्रपदं ।
गणधरकृतषष्टिसहस्त्रप्रश्नोक्तिर्यत्र पूज्यते महसा ।।
ॐ ह्रीं द्विलक्षाष्टविंशतिसहस्रपदरंजिताय व्याख्याप्रज्ञप्तयेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ગણધરદેવકૃત સાઈઠ હજાર પ્રશ્નોની કથાવાળા બે લાખ અઠ્યાવીસ હજાર પદયુક્ત વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞપ્તિ અંગની હું ખૂબ જ ઉત્સાહથી પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૦૫॥

भावार्थ :– गणधर देव कृत साठ हजार प्रश्नों की कथा वाले दो लाख अठ्ठाइस हजार पद युक्त व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग की मैं बड़े उत्साह से पूजा करता हूँ। ॥०७॥०५॥

ज्ञातृधर्मकथांग

॥०७॥०६॥

ज्ञातृधर्मकथांगं शरलक्षसषट्कपंचाशत् ।
पदमहितं वृषचर्चाप्रश्नोत्तरपूजितं महये ।।

ॐ ह्रीं पंचलक्षषट्पंचाशत्सहस्रपदसंगतायज्ञातृधर्मकथांगायार्घं ।

ભાવાર્થ :– પાંચ લાખ છપ્પન હજાર પદ સહિત ધર્મચર્ચા પ્રશ્નોત્તર સંયુક્ત જ્ઞાતૃધર્મકથાંગ અંગની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૦૬॥

भावार्थ :– पाँच लाख छप्पन हजार पद सहित धर्म चर्चा प्रश्नोत्तर संयुक्त ज्ञातृधर्मकथांग नामक अंग की मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥०६॥

उपासकाध्यानांग

॥०७॥०७॥

उपासकपाठशिवलक्षससप्ततिसहस्रपदभंगं ।
व्रतशीलाधानादिक्रियाप्रवीणं यजामि सलिलाद्यैः ।।

ॐ ह्रीं एकादशलक्षसप्ततिसहस्रपदशोभितोपासकाध्ययनांगाया ।

ભાવાર્થ :– અગિયાર લાખ સત્તર હજાર પદ સહિત અને વ્રત, શીલાધાન આદિ ક્રિયામાં પ્રવીણપણાથી યુક્ત ઉપાસક અધ્યયન અંગની હું જળ આદિ દ્રવ્યોથી પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૦૭॥

भावार्थ :– ग्यारह लाख सत्तर हजार पदसहित और व्रतशील क्रिया आधान आदि के प्रवीणपने से युक्त उपासकाध्ययन अंग की मैं जलादि द्रव्यों से पूजा करता हूँ। ॥०७॥०७॥

अंत:कृतदशांग

॥०७॥०८॥

अंतकृदंगं दश दश साधुजनोपसर्गकथकमधितीर्थम् ।
तेषां निःश्रेयसलंभनमपि गणधरपठितं यजामि मुदा ।।

ॐ ह्रीं अंतकृतदशांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– એક એક તીર્થંકરના સમયમાં દશ-દશ મુનિઓને ઘોર ઉપસર્ગપૂર્વક નિર્વાણની પ્રાપ્તિ થાય છે એવા, ગણધરદેવ દ્વારા ભણાયેલા અંતકૃતદશાંગની હું આનંદપૂર્વક પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૦૮॥

भावार्थ :– एक-एक तीर्थंकर के समय में दश-दश मुनियों को घोर उपसर्ग पूर्वक निर्वाण की प्राप्ति हुयी है ऐसे गणधर पठित अंतकृत दशांग की मैं आनन्दपूर्वक पूजा करता हूँ। ॥०७॥०८॥

॥०७॥०९॥

उपपादानुत्तरकं द्विचत्वारिंशल्लक्षसहस्रपदं ।
विजयादिषु नियमेन मुनिगतिकथकं यजामि महनीयं ।।

ॐ ह्रीं अनुत्तरौपपादिकांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– બે લાખ ઉપરાંત હજારો પદ સંયુક્ત અને દશ મુનિ ઘોર ઉપસર્ગ સહીને વિજયાદિ વિમાનમાં ઉત્પન્ન થાય છે, તેમનું વર્ણન કરનાર પૂજ્ય અનુત્તર ઉપપાદક અંગની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૦૯॥

भावार्थ :– दो लाख कई हजार पद संयुक्त और दश मुनि घोर उपसर्ग सहकर विजयादि विमानों में उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन करने वाले पूज्य अनुत्तरौपपादिक अंग की मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥०९॥

प्रश्नव्याकरणांग

॥०७॥१०॥

प्रश्नव्याकरणांगं त्रिणवतिलक्षाधिषोडशसहस्रपदं ।
नष्टोद्दिष्टं सुखलाभगतिभाविकथं पूजये चरुफलाद्यैः ॥

ॐ ह्रीं प्रश्नव्याकरणांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ત્રાણું લાખ સોળ હજાર પદ સંયુક્ત અને નષ્ટ, ઉદ્દિષ્ટ, સુખ-લાભ ભાવિ ગતિ સંબંધિ પ્રશ્ન જેમાં છે એવા પ્રશ્નવ્યાકરણ અંગની હું નૈવેદ્ય, ફળ આદિથી પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૧૦॥

भावार्थ :– तेरानवे लाख सोलह हजार पद संयुक्त और नष्ट,उद्दिष्ट, सुख-लाभ भाविगति आदि संबंधी प्रश्न जिसमें हैं ऐसे प्रश्नव्याकरण अंग की मैं नैवेद्य फलादि से पूजा करता हूँ। ॥०७॥१०॥

विपाकसूत्र

॥०७॥११॥

अंगं विपाकसूत्रं कोट्येकचतुरशीतिसहस्र पदं ।
उदयोदीरणसत्त्वादिकथं यजनभागतोऽर्चामि ।।

ॐ ह्रीं विपाकसूत्रांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– એક કરોડ ચોર્યાસી હજાર પદ સંયુક્ત તથા કર્મોના ઉદય, ઉદીરણા આદિની કથા સહિતના વિપાક સૂત્ર અંગની અમે યજ્ઞભાગથી પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૭॥૧૧॥

भावार्थ :– एक कोटि चौरासी हजार पद संयुक्त तथा कर्मों के उदय उदीरणा आदि की कथा सहित विपाक सूत्र नामक अंग की हम यज्ञ भाग से पूजा करते हैं। ॥०७॥११॥

उत्पाद पूर्व

॥०७॥१२॥

उत्पादपूर्वकोटीपदपद्धतिजीवमुखषट्कं ।
निजनिजस्वभावघटितं कथयत्प्रांचामि भक्तिभरः ।।

ॐ ह्रीं उत्पादपूर्वांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- એક કરોડ પદ દ્વારા જીવ આદિ દ્રવ્યોના પોતપોતાના સ્વભાવ સહિત વર્ણન કરનારા "ઉત્પાદ પૂર્વ"ની અમે ભક્તિભાવથી પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૭॥૧૨॥

भावार्थ :- एक करोड़ पदों के द्वारा जीव आदि छह द्रव्यों का अपने-अपने स्वभाव सहित वर्णन करने वाले उत्पाद पूर्व की हम भक्ति भाव से पूजा करते हैं। ॥०७॥१२॥

अग्रायिणी पूर्व

॥०७॥१३॥

अग्रायणीयपूर्वं षण्णवतिकोटिपदं तु यत्र तत्त्वकथा ।
सुनयदुर्णयतत्स्वप्रामाण्यप्ररूपकं प्रयजे ।।

ॐ ह्रीं अग्रायणीयपूर्वांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- છન્નું કરોડ પદ સંયુક્ત અને સુનય-દુર્નય તથા પ્રમાણ આદિની કથા કરનારા "અગ્રાયણીય પૂર્વ"ની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૭॥૧૩॥

भावार्थ :- छय़ानवे करोड़ पद संयुक्त एवं सुनय-दुर्नय तथा प्रमाण आदि की कथा करने वाले अग्रायणीयपूर्व की हम पूजा करते हैं। ॥०७॥१३॥

वीर्यप्रवाद पूर्व

॥०७॥१४॥

वीर्यानुवादमधिसप्ततिलक्षपादं
द्रव्यस्वतत्त्वगुणपर्ययवादमर्थ्यं ।
तत्तत्स्वभावगतिवीर्यविधानदक्षं
संपूजये निजगुणप्रतिपत्तिहेतोः ।।

ॐ ह्रीं वीर्यानुवादांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સિત્તેર લાખ પદ દ્વારા દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયનું કથન કરનારા સાર્થક નામ યુક્ત તેમજ તે દ્રવ્ય આદિના સ્વભાવ ગતિ, વીર્યનું વર્ણન કરવામાં નિપુણ "વીર્યાનુવાદ પૂર્વ"ની હું મારા ગુણોની પ્રાપ્તિ માટે પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૧૪॥

भावार्थ :– सत्तर लाख पदों के द्वारा द्रव्य, गुण, पर्यायों का कथन करने वाले, सार्थक नामयुक्त एवं उन द्रव्य आदि के स्वभाव गति वीर्य के वर्णन करने में दक्ष, मैं अपने गुणों की प्राप्ति के लिए वीर्यानुवादपूर्व की पूजा करता हूँ। ॥०७॥१४॥

अस्तिनादप्रवाद पूर्व

॥०७॥१५॥

नास्त्यस्तिवादमधिषष्टिसुलक्षपादं
सप्तोद्धभंगरचनाप्रतिपत्तिमूलं ।
स्याद्वादनीतिभिरुदस्तविरोधमात्रं
संपूजये जिनमतप्रसवैकहेतुम् ।।

ॐ ह्रीं अस्तिनास्तिप्रवादांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સાંઈઠ લાખ પદ સંયુક્ત અને પ્રશંસનીય સાત ભંગોની રચનાની પ્રાપ્તિનું કારણ તથા સ્યાદ્વાદ નયોથી વિરોધમાત્રને દૂર કરનાર તેમજ જિનમતની ઉત્પત્તિનું કારણ એવા "અસ્તિ નાસ્તિ પ્રવાદ"ની હું પૂજા કરું છું.॥૦૭॥૧૫॥

भावार्थ :– साठ लाख पद संयुक्त और प्रसंशनीय सात भंगों की रचना की प्राप्ति का कारण तथा स्याद्वाद नयों से विरोधमात्र को दूर करने वाले एवं जिनमत की उत्पत्ति का कारण ऐसे अस्तिनास्ति प्रवाद की मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥१५॥

ज्ञानप्रवाद पूर्व

॥०७॥१६॥

ज्ञानप्रवादमभिकोटिपदं तु हीन
मेकेन बाणमितभानविवर्णनांकं ।
कुज्ञानरूपतिमिरौघहरं समर्चे
यत्पाठकैः क्षणमिते समये विचार्यम् ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानप्रवादांगायार्घम् ।

ભાવાર્થ :- નવ્વાણું લાખ નવ્વાણું હજાર નવસો નવ્વાણું પદો દ્વારા પાંચ પ્રકારના જ્ઞાનનું નિરૂપણ કરવારૂપ ચિહ્નવાળા અને કુજ્ઞાનરૂપી અંધકારને હરનારા એવા ઉપાધ્યાય પરમેષ્ઠી દ્વારા ક્ષણમાત્રમાં વિચારવા યોગ્ય "જ્ઞાનપ્રવાદ"ની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૧૬॥

भावार्थ :- एक कम एक करोड़ पदों के द्वारा पाँच प्रकार के ज्ञानों के निरूपण करने रूप चिह्न वाले और कुज्ञान रूपी तिमिर (अन्धकार) को हरने वाले ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी के द्वारा क्षण मात्र में विचारने योग्य ज्ञानप्रवाद की मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥१६॥

सत्यप्रवाद पूर्व

॥०७॥१७॥

सत्यप्रवादमधिकं रसपादजातैः
कोटीपदं निखिलसत्यविचारदक्षं ।
श्रोतृप्रवक्तृगुणभेदकथापि यत्र
तं पूर्वमुख्यमभिवादय उक्तमंत्रैः ।।

ॐ ह्रीं सत्यप्रवादायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– એક કરોડ છ પદ દ્વારા સમસ્ત સત્યના ભેદનો વિચાર કરવામાં નિપુણ તથા જેમાં શ્રોતા અને વક્તાઓના ગુણોની કથા છે એવા "સત્યપ્રવાદ પૂર્વ"ની હું આર્ષ મંત્રોથી અભિવાદન કરીને સ્તુતિ કરું છું. ॥૦૭॥૧૭॥

भावार्थ :– एक करोड़ छः पदों के द्वारा समस्त सत्य के भेदके विचार करने में निपुण तथा जिसमें श्रोता और वक्ताओं केगुणोंकी कथा है ऐसे सत्यप्रवाद पूर्व की मैं आर्ष मंत्रों से अभिवादन करके स्तुति करता हूँ। ॥०७॥१७॥

आत्मप्रवाद पूर्व

॥०७॥१८॥

आत्मप्रवादरसविंशतिकोटिपादान्
जीवस्य कर्तृगुणभोक्तृगुणादिवादान् ।
शुद्धेतरप्रणयतत्कथनं तु येषु
वंदामहे तदभिलाप्यगुणप्रवृत्त्यै ।।

ॐ ह्रीं आत्मप्रवादायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– "આત્મપ્રવાદ પૂર્વ" છવ્વીસ કરોડ પદ દ્વારા જીવના કર્તૃત્વ, ભોકતૃત્વ આદિ ગુણોનું કથન કરનારો છે તથા જેમાં નિશ્ચય, વ્યવહાર નયાશ્રિત કથન છે અને તેમાં કહેલા ગુણોની પ્રવૃત્તિ માટે વંદના કરીએ છીએ. ॥૦૭॥૧૮॥

भावार्थ :– आत्मप्रवाद पूर्व छब्बीस करोड़ पदों के द्वारा जीव के कर्त्तव्य, भोक्तृत्व आदि गुणों का कथन करने वाला है तथा जिसमें निश्चय व्यवहार नयाश्रित कथन है हम उसमें कहे हुए गुणों की प्रवृत्ति के लिए वंदना करते हैं। ॥०७॥१७॥

कर्मप्रवाद पूर्व

॥०७॥१९॥

कर्मप्रवादसमये विधुसंख्यकोटी
संख्यानशीतिलयुतान् वसुकर्मणां च ।
सत्त्वापकर्षणनिधत्तिमुखानुवादे
पद्यान् स्थितानमितपूजनया धिनोमि ।।

ॐ ह्रीं कर्मप्रवादायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– એક કરોડ એંસી લાખ પદ સંયુક્ત અને આઠ પ્રકારના કર્મોના સત્ત્વ, અપકર્ષણ, નિધત્તિ આદિનું વર્ણન કરનારા "કર્મપ્રવાદ પૂર્વ"ની અષ્ટદ્રવ્યથી પૂજન કરીને પ્રસન્ન કરું છું. ॥૦૭॥૧૯॥

भावार्थ :– एक करोड़ अस्सी लाख पद संयुक्त और आठ प्रकार के कर्मों के सत्व, अपकर्षण, निधत्ति आदि का वर्णन करने वाले कर्मप्रवाद श्रुत की अष्द्रव्य से पूजन करके प्रसन्न करता हूँ। ॥०७॥१९॥

प्रत्याख्यान पूर्व

॥०७॥२०॥

प्रत्याहृतेश्चतुरशीतिसुलक्षपद्यान्
निक्षेपसंस्थितिविधानकथप्रसिद्धान् ।
न्यासप्रमाणनयलक्षणसंयुजोऽर्चे
यागार्चने श्रुतधरस्तवनोपयुक्तान् ।।

ॐ ह्रीं प्रत्याहारपूर्वायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– "પ્રત્યાહાર પૂર્વ" ચોર્યાસી લાખ પદ દ્વારા નિક્ષેપના સંસ્થાન, વિધાન આદિની કથામાં પ્રસિદ્ધ અને નિક્ષેપ,પ્રમાણ અને નયોના લક્ષણોને બતાવનાર તથા શ્રુતના પારગામીઓ દ્વારા સંસ્તુત "પ્રત્યાહાર પૂર્વ"ની હું આ યાગમંડળમાં પૂજા કરુ છું. ॥૦૭॥૨૦॥

भावार्थ :– प्रत्याहार पूर्व चौरासी लाख पदों के द्वारा निक्षेप के संस्थान विधान आदि की कथा में प्रसिद्ध और निक्षेप प्रमाण और नयों के लक्षणों को बताने वालें तथा श्रुत के पारगामियों द्वारा संस्तुत प्रत्याहारपूर्व की मैं इस यागमंडल में पूजा करता हूँ। ॥०७॥२०॥

विद्यानुवाद पूर्व

॥०७॥२१॥

विद्यानुवादभुवि चंद्रसुकोटिकाष्ठा
लक्षा: पदा यदधिमंत्रविधिप्रकार: ।
संरोहिणीप्रभृतिदीर्घविदां प्रसंग
स्तं पूजये गुरुमुखांबुजकोशजातं ।।

ॐ ह्रीं विद्यानुवादपूर्वायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– ગુરુના મુખકમળથી વિનિર્ગત વિદ્યાનુવાદરૂપી ભૂમિમાં એક કરોડ પદ છે અને તેમાં સમસ્ત મંત્રોના ભેદ છે. રોહિણી આદિ મહાવિદ્યાની સિદ્ધિ થવાના પ્રસંગ છે એવા "વિદ્યાનુવાદ પૂર્વ"ની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૨૧॥

भावार्थ :– गुरु के मुखकमल से विनिर्गत विद्यानुवाद रूपी भूमि में एक करोड़ पद हैं और उसमें समस्त मंत्रों के भेद हैं । रोहिणी आदि महाविद्याओं की सिद्धि होने के प्रसंग हैं ऐसे विद्यानुवादपूर्व की मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥२१॥

कल्याणवाद पूर्व

॥०७॥२२॥

कल्याणवादमननश्रुतमंगमुख्यं
षड् विंशतिप्रमितकोटिपदं समर्चे ।
यत्रास्ति तीर्थकरकामबलत्रिखंडि
जन्मोत्सवाप्तिविधिरुत्तमभावना च ।।

ॐ ह्रीं कल्याणवादपूर्वायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– છવ્વીસ કરોડ પદથી સંયુક્ત "કલ્યાણવાદ (પૂર્વ)"ના મનનરૂપ શ્રુત સમસ્ત અંગોમાં મુખ્ય છે અને જેમાં તીર્થંકર, કામદેવ, બળદેવ, નારાયણ આદિના જન્મોત્સવના પ્રાપ્તિની વિધિ તથા ભાવનાઓનું વર્ણન છે કે જેની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૨૨॥

भावार्थ :– छब्बीस कोटि पदों से संयुक्त कल्याणवाद का मननरूप श्रुत समस्त अंगों में मुख्य है एवं जिसमें तीर्थंकर, कामदेव, बलदेव,नारायण आदि के जन्म उत्सव की प्राप्ति की विधि तथा भावनाओं का वर्णन है उसकी मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥२२॥

प्राणवाद पूर्व

॥०७॥२३॥

प्राणप्रवादमभिवादयतां नराणां
विश्वप्रमाणमितकोटिपदाभियुक्तं ।
कार्तिर्भवेन्निरयघोरभवस्य चायु-
र्वेदादिसुस्वरभृतं परिपूजयामि ।।

ॐ ह्रीं प्राणप्रवादपूर्वायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– આયુર્વેદ, વૈદ્યક તથા સ્વરોના ડાબે-જમણે વહેવાના શુભાશુભના કથન કરવાવાળા, ચૌદ કરોડ પદ સંયુક્ત "પ્રાણપ્રવાદ (પૂર્વ)" નામના અંગની પૂજા કરનારા, મનુષ્યોને નરક આદિ ગતિના ઘોર દુઃખોની પીડા કેવી રીતે હોઈ શકે? ભાવાર્થાત્ ન હોઈ શકે તેથી હું પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૨૩॥

भावार्थ :– आयुर्वेद, वैद्यक तथा स्वरों के दायें-बायें बहने के शुभाशुभ के कथन करने वाले चौदह करोड़ पद संयुक्त प्राणवाद नामक अंग की पूजा करने वाले मनुष्यों को नरक आदि गति के घोर दुःखों की पीड़ा कैसे हो सकती है? भावार्थात् नहीं हो सकती इसलिए मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥२३॥

क्रियाविशाल पूर्व

॥०७॥२४॥

क्रियाविशालं नवकोटिपद्यैर्युक्तं सुसंगीतकलाविशिष्टं ।
छंदोगणाद्यानानुभावयंतमध्यापकानत्र विधौ यजामि ।।

ॐ ह्रीं क्रियाविशालपूर्वायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– નવ કરોડ પદ દ્વારા સંગીત, કલા આદિથી વિશિષ્ટ તથા છંદો આદિનો પ્રકાશ કરનારા "ક્રિયાવિશાલ પૂર્વ"ની તેમજ અધ્યાપક પરમેષ્ઠીની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૨૪॥

भावार्थ :– नौ करोड़ पदों के द्वारा संगीत, कला आदि से विशिष्ट तथा छंदों आदि का प्रकाश करने वाले क्रियाविशाल नामक पूर्व की तथा अध्यापक परमेष्ठी की मैं पूजा करता हूँ। ॥०७॥२४॥

लोक बिंदुसार पूर्व

॥०७॥२५॥

त्रैलोक्यबिंदौ शिवतत्त्वचिंता सार्द्धा सुकोटी द्विदशप्रमाणा ।
पदास्त्रिलोकीस्थितिसद्विधानमत्रार्चये भ्रांतिविनाशनाय ।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यबिंदुपूर्वायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સાડા બાર કરોડ પદ દ્વારા મોક્ષતત્ત્વનું ચિંતવન તથા ત્રણલોકની સિદ્ધિનું વર્ણન કરનાર "ત્રૈલોક્યબિંદુ પૂર્વ"ની હું ભ્રાંતિનો નાશ કરવા માટે પૂજા કરું છું. ॥०७॥२५॥

भावार्थ :– साढ़े बारह करोड़ पदों के द्वारा मोक्षतत्त्व का चिंतन एवं तीनलोक की स्थिति का वर्णन करने वाले त्रैलोक्यबिंदु नामक पूर्व की मैं भ्रांति का नाश करने के लिए; पूजा करता हूँ। ॥०७॥२५॥

सामूहिक अर्घ

॥०७॥२६॥

इत्थं श्रीश्रुतदेवतां जिनवरांभोध्युद्गतामृद्धिभृ-
न्मुख्यैर्ग्रंथनिबंधनाक्षरकृतामालोकयंतीं त्रयं ।
लोकानां तदवाप्तिपाठनधियोपाध्यायशुद्धात्मनः
कृत्वाराधनसद्विधिं धृतमहार्घेणार्चये भक्तितः ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् बिंबप्रतिष्ठोत्सवस्सद् विधाने मुख्य
पूजार्हसप्तमवलयोन्मुद्रितद्वादशांग-श्रुत
देवताभ्यस्तदाराधकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यश्च पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

ભાવાર્થ :– આ રીતે જિનવરરૂપી સમુદ્રથી ઉત્પન્ન થયેલી અને ઋદ્ધિધારી ગણધરો દ્વારા ગ્રંથરૂપે ગૂંથવામાં ત્રણ લોકને જાણવામાં સક્ષમ દ્વાદશાંગ જિનવાણીની તથા તેને પ્રાપ્ત કરીને ભણાવનારા ઉપાધ્યાય શુદ્ધ આત્માઓની આરાધનાની વિધિપૂર્વક ભક્તિથી અર્ઘ ચડાવીને પૂજા કરું છું. ॥૦૭॥૨૬॥

भावार्थ :– इस प्रकार जिनवर रूपी समुद्र से उत्पन्न हुयी और ऋद्धिधारी गणधरों के द्वारा ग्रन्थरूप में गूँथी गयी तथा तीन लोक को देखने में सक्षम द्वादशांग जिनवाणी की तथा उसे प्राप्त कर पढ़ाने वाले उपाध्याय शुद्ध आत्माओं की आराधना की विधि पूर्वक भक्ति से अर्घ उतारकर पूजा करता हूँ। ॥०७॥२६॥

अष्टम वलय परिचय

वलय में अर्घ्य की संख्या : २९ (साधु परमेष्ठी के २८ गुण के २८ अर्घ्य और १ समुच्चय अर्घ्य)

वलय का विषय एवं संक्षिप्त परिचय : २८ (साधु परमेष्ठी के २८ गुण के २८ अर्घ्य और १ समुच्चय अर्घ्य) वलयका विषय एवं संक्षिप्त परिचय : अष्टम वलय में हम श्री साधु परमेष्ठी के अहिंसादि पाँच महाव्रत, ईर्यादि पाँच समिति, स्पर्शेन्द्रियादि पाँच इन्द्रियविजय, सामायिकादि षट्-आवश्यक और नग्नभाव, अदंतधोवन आदि ७ मुलगुण ऐसे २८ गुणोको याद करके प्रत्येक गुणकी पूजन करते हैं और अंतमे एक समुच्चय अर्घ्य चढ़ाते है।

वलय एवं अर्घ्य का दृशिकरण : "मुनिराज तो सिद्धों के लघुनंदन है", "भावलिंगी संत तो केवलज्ञान की तलेटी है", ऐसा कहकर हमारे पूज्य गुरूदेवश्री एवं पूज्य भगवती माताने निर्ग्रन्थ मुनिवरो की ख़ूब महिमा की है। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने हर एक प्रवचन में श्री निर्ग्रंथ मुनिवरो के प्रति अपना अंतरंग अहोभाव व्यक्त किये है। इस वलय में श्री साधु परमेष्ठी के प्रत्येक गुण जैसे कि इर्या समिति, भाषा समिति इत्यादि का दृशिकरण में हमने श्री साधु परमेष्ठी की अंतरंग वीतरागी परिणती, सहज उदासीनता एवं बाह्य आचरण-व्यवहार को दर्शाया है। श्री साधु परमेष्ठी, तपोधन तो हमारे आदर्श है। यह पूजन करके हम सभी साधर्मी पंच परमेष्ठी में अपना स्थान बना लें यही हमारी भावना है।

अहिंसा महाव्रत

॥०८॥०१॥

जीवाजीवद्भिरधिकरणव्याप्तदोषव्युदासात्
सूक्ष्मस्थूलव्यवहृतिहतेः सर्वथात्यागभावात् ।
मूर्धन्यासं सकलविरतिं संदधानान्मुनींद्रा-
नाहिंसाख्यव्रतपरिवृतान् पूजये भावशुद्ध्या ।।

ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જીવ અને અજીવ બંને પ્રકારના અધિકરણમાં વ્યાપ્ત દોષોના નાશ કરવાથી સૂક્ષ્મ અને સ્થૂળ બંને પ્રકારની હિંસાનો ત્યાગ કરવાથી વિશિષ્ટ પૂર્ણ અહિંસા મહાવ્રતને ધારણ કરનારા મુનીન્દ્રોની હું ભાવશુદ્ધિથી પૂજા કરું છું. ॥૦૮॥૦૧॥

भावार्थ :– जीव और अजीव दोनों प्रकार के अधिकरण में व्याप्त दोषों के नाश करने से सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार की हिंसा का त्याग करने से विशिष्ट पूर्ण अहिंसा महाव्रत को धारण करने वाले, मुनीन्द्रों की मैं भावशुद्धि से पूजा करता हूँ। ।।०८॥०१॥

सत्य महाव्रत

॥०८॥०२॥

मिथ्याभाषासकलविगमात् प्राप्तवाक्शुद्ध्युपेतान्
स्याद्वादेशान् विविधसुनयैर्धर्ममार्गप्रकाशम् ।
संकुर्वाणानतिचरणधीदूरगानात्मसंवित्-
सम्राजस्तांश्चरुफलगणैः पूजयाम्यध्वरेऽस्मिन् ॥

ॐ ह्रीं अनृतपरित्यागमहाव्रतधारकायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– સંપૂર્ણ મિથ્યાભાષણના ત્યાગથી વચનશુદ્ધિને પ્રાપ્ત, સ્યાદ્વાદ વિદ્યાના સ્વામી તથા વિવિધ પ્રકારના નયો દ્વારા ધર્મમાર્ગનું પ્રકાશન કરનારા અને અતિચારોની બુદ્ધિથી દૂર અને આત્મવિદ્યાના ચક્રવર્તી સાધુ પરમેષ્ઠીની હું યજ્ઞમાં પૂજા કરું છું. ॥૦૮॥૦૨॥

भावार्थ :–सम्पूर्ण मिथ्याभाषण के त्याग से वचनशुद्धि को प्राप्त, स्याद्वाद विद्या के स्वामी तथा नाना प्रकार के नयों के द्वारा धर्ममार्ग का प्रकाशन करने वाले एवं अतीचारों की बुद्धि से दूर और आत्मविद्या के चक्रवर्ती साधु परमेष्ठी की मैं यज्ञ में पूजा करता हूँ। ॥०८॥०२॥

अचौर्य महाव्रत

॥०८॥०३॥

आकर्तव्ये शिवपदगृहे रंतुकामा: पृथक्त्वं
देहात्मीयं करगतमिवाध्यक्षमादर्शयंत: ।
प्राणग्राहं तृणमपि परैरप्रदत्तं त्यजंत-
स्त्रायंतां मां चरणवरिवस्याप्रशक्तं मुनींद्रा: ।।

ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :–કૃતકૃત્ય મોક્ષમહેલમાં ક્રીડા કરવાના ઇચ્છુક, શરીર તથા આત્માને અલગ કરનારા અને હાથમાં રાખેલ આંબળાની જેમ વસ્તુને પ્રત્યક્ષ દેખનારા અને પ્રાણાંત સમયમાં પણ દીધા વિના આપેલું તૃણ પણ ગ્રહણ નહીં કરનારા મુનિરાજોની હું સેવા કરું છું. તેઓ મારી રક્ષા કરે. ॥૦૮॥૦૩॥

भावार्थ :– कुतकृत्य मोक्षमहल में क्रीड़ा करने के इच्छुक शरीर तथा आत्मा को अलग करने वाले एवं हाथ में रखे आंवले की तरह वस्तु को प्रत्यक्ष देखने वाले और प्राणांत समय मेंभी बिना दिये तृण को भी ग्रहण नहीं करने वाले मुनीराजों की मैं सेवा करता हूँ। वे मेरी रक्षा करें। ॥०८॥०३॥

ब्रह्मचर्य महाव्रत

॥०८॥०४॥

तिर्यग्मर्त्यामरगतिगता याः स्त्रियः काष्ठचित्रा–
लेप्याश्मान्याश्चिदचिदुदधिस्थास्तवस्तास्त्रियोगं ।
स्वप्ने जाग्रद्दिशि कतिचिदप्यर्तिमुद्राः स्मरंतो
ये वै शीलं परिदृढमगुस्तान्-जेऽहं त्रिशुद्ध्या ।।

ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– તિર્યંચ, મનુષ્ય તથા દેવગતિમાં થનારી ચેતન સ્ત્રીઓનું તથા કાષ્ઠ, પાષાણ, ચિત્રામ, લેપ આદિ અનેક ભેદવાળી અચેતન સ્ત્રીઓનું જેઓ મન, વચન, કાયાથી સ્વપ્ન તથા જાગૃત કોઈપણ અવસ્થામાં સ્મરણ કરતાં નથી એવા દૃઢ શીલવ્રતના ધારક મુનીન્દ્રોની હું મન, વચન, કાયાની શુદ્ધિપૂર્વક પૂજા કરું છું. ॥૦૮॥૦૪॥

भावार्थ :– तिर्यंच, मनुष्य तथा देवगति में होने वाली चेतन स्त्रियों का तथा काष्ट, पाषाण, चित्राम, लेप आदि अनेक भेद वाली अचेतन स्त्रियों का जो मन-वचन-काय से स्वप्न तथा जाग्रत किसी भी अवस्था में स्मरण नहीं करते ऐसे दृढ़ शीलव्रत के धारक मुनीन्द्रों की मैं मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक पूजा करता हूँ। ॥०८॥०४॥

परिग्रह त्याग महाव्रत

॥०८॥०५॥

रागद्वेषाद्यभिकृतपरावृत्तदोषांतरंगा
ये बाह्या अप्युदितदशधा ते ह्यकिंचन्यभावात् ।
नापि स्थैर्यं दधुरुरुगुणाग्राहिणि स्वांतमध्ये
ग्रंथा येषां चरणधरणिं पूजयाम्यादरेण ।।

ॐ ह्रीं आकिंचन्यभावधारकायार्घम् ।

ભાવાર્થ :– રાગ-દ્વેષથી ઉત્પન્ન થનારા અંતરંગદોષ (પરિગ્રહ) અને આકિંચનભાવના કારણે દશ પ્રકારના બહિરંગપરિગ્રહ જેમના પ્રચૂર ગુણવાળા અંતરંગ હૃદયમાં સ્થાન પામતા નથી, તેમના ચરણોની હું આદરથી પૂજા કરુ છું. ॥૦૮॥૦૫॥

भावार्थ :– राग-द्वेष से उत्पन्न होने वाले अन्तरंग दोष (परिग्रह) और अकिंचनभाव के कारण दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह जिनके प्रचुरगुण वाले अंतरंग हृदय में स्थान नहीं पाते हैं उनके चरणों की मैं आदर से पूजा करता हूँ। ॥०८॥०५॥

ईर्या समिति

॥०८॥०६॥

ईर्यापंथास्तिमितचकितस्तब्धदृष्टिप्रयोगा-
भावाच्छुद्धो युगमितधरालोकनेनापि येषां ।
वर्षाकालावनियवसभूजंतुजातिं विहाय
तीर्थश्रेयोगुरुनतिवशाद् गच्छतोऽर्चे यतींद्रान् ।।

ॐ ह्रीं ईर्यासमितिधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- જેમનું ગમન સ્થગિત, ચકિત, લીન, દૃષ્ટિ પ્રયોગના અભાવથી અને યુગ ભાવાર્થાત્ ચાર હાથ જમીનના જોવાથી શુદ્ધ છે અને વર્ષાઋતુમાં ઉત્પન્ન થયેલા યવ, અંકુર હરિતકાય આદિ પ્રાણીઓની જાતિને છોડીને તીર્થ, કલ્યાણક તથાગુરુઓના વંદના નમસ્કાર માટે ગમન કરનારા મુનિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૮॥૦૬॥

भावार्थ :- जिनका गमन स्थगित, चकित, लीन दृष्टि प्रयोग के अभाव से और युग भावार्थात् चार हाथ जमीन के देखने से शुद्ध है और वर्षा ऋतु में उत्पन्न हुये यव, अंकुर हरितकाय आदि प्राणियों की जाति को छोड़कर तीर्थ, कल्याणक तथा गुरुओं के वंदना नमस्कार के लिए गमन करने वाले मुनियों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०८॥०६॥

भाषा समिति

॥०८॥०७॥

लोभक्रोधाद्यरिगणजयाद् भीतिमोहापमर्दा–
न्नि:शल्याद्यान् जिनवचिसुधाकंठपानप्रपुष्टान् ।
याथातथ्यं श्रुतनिगमयोर्जानत: प्रश्नकर्तु–
र्वाभिप्रायं वचनसमितीर्धारकान् पूजयामि ।।

ॐ ह्रीं भाषासमितिधारकसाधुपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– લોભ, ક્રોધ આદિ શત્રુને જીતી લેવાથી, ભય અને મોહનો નાશ થઈ જવાથી, નિ:શલ્ય, જિનવચનરૂપ અમૃતનું કંઠથી પાન કરવાથી પુષ્ટ અને શાસ્ત્ર સિદ્ધાંતના યથાર્થ સ્વરૂપને જાણનારા અને પ્રશ્નકર્તાના અભિપ્રાયને જાણનારા, વચનસમિતિના ધારક મુનિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૮॥૦૭॥

भावार्थ :– लोभ, क्रोध आदि वैरियों को जीत लेने से, भय मोह का नाश हो जाने से नि:शल्य, जिनवचनरूप अमृत का कण्ठ से पान करने से पुष्ट और शास्त्र सिद्धान्त के यथार्थ स्वरूप को जानने वाले एवं प्रश्नकर्त्ता के अभिप्राय को जानने वाले वचनसमिति के धारक मुनियों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०८॥०७॥

एषणा समिति

॥०८॥०८॥

षट्चत्वारिंशदतिचरणाम्रेडितत्यागयोगात्
दोष्णां चातुर्दशमलभुवां हापनात् कायहानिं ।
अप्यासीनाममृतधिषणाभ्यासतोऽग्रे कृताथा
मन्वानास्तेऽशनविरतय: पांतु पादश्रितं मां ।।

ॐ ह्रीं एषणासमितिधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यम् ।

ભાવાર્થ :– છેતાલીસ અતિચારોનો વારંવાર ત્યાગ કરવાથી અને ચૌદ મળદોષોથી ઉત્પન્ન દોષોનો ત્યાગ કરવાથી જો શરીરનો નાશ થતો હોય તો તેને અમૃતની બુદ્ધિ સમાન કૃતાર્થ માનનારા અને ચાર પ્રકારના ભોજનનો ત્યાગ કરનારા મુનીન્દ્રના ચરણારવિંદનો હું આશ્રય લઉં છું. તેઓ મારી રક્ષા કરે. ॥૦૮॥૦૮॥

भावार्थ :– छयालीस अतीचारों का बारंबार त्याग करने से और चौदह मल दोषों से उत्पन्न दोषों के त्याग से यदि शरीर का नाश होता है तो उसे अमृत की बुद्धि के समान कृतार्थ मानने वाले एवं चार प्रकार के भोजन का त्याग करने वाले मुनीन्द्र के चरणारविंद का में आश्रय लेता हूँ। वे मेरी रक्षा करें। ॥०८॥०८॥

आदान निक्षेपण समिति

॥०८॥०९॥

वस्तुग्राहं त्वंपरिणामाद् दाननिक्षेपयोगा
भाव: पूर्वं दृढपरिचयाद् विद्यते शुद्ध एव ।
पिच्छाकुंडीग्रहणमपि ये रक्षणाचारहेतो:
कुर्वंतोऽप्यत्र निहित दृशस्तान्यजे सत्समित्यै ।।

ॐ ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितिधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

ભાવાર્થ :– જેમના ઉપર વસ્તુના ગ્રહણમાત્રનું પણ પરિણામ થતું નથી, જે આદાન છે તથા તેમના યોગનો અભાવ પહેલેથી જ થવાથી શુદ્ધ છે, પીછી, કમંડળ, ચારિત્રશુદ્ધિ માટે નેત્રોથી જોનારા આદાન નિક્ષેપણ સમિતિની પ્રાપ્તિ માટે પૂજા કરું છું. ॥૦૮॥૦૯॥

भावार्थ :– जिनके पर वस्तु के ग्रहण मात्र का भी परिणाम नहीं होता है, सो आदान है, तथा इनके योग का अभाव पहले से ही होने से शुद्ध है, पिछी कमंडलु, चारित्रशुद्धि के लिए नेत्रों से देखने वाले आदान निक्षेपण समिति की प्राप्ति के लिए पूजा करता हूँ। ॥०८॥०९॥

व्युत्सर्ग समिति

॥०८॥१०॥

व्युत्सर्गाख्यां समितिमघृणां नासिकानेत्रपायू-
पस्थस्थानान् मलत्दृतिविधौ सूत्रमार्गानुकूलं ।
रक्षंतोऽन्यानपि सदयतां पोषयंतोप्युदग्रां
धन्या दांतेंद्रियपरिकरा आददंत्वर्चनां मे ॥

ॐ ह्रीं व्युत्सर्गसमितिपालकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ નાસિકા, નેત્ર, ગુદા, લિંગ આદિ સ્થાનથી મળના નિષ્કાસનની વિધિથી શાસ્ત્રને અનુકૂળ, અન્ય પ્રાણીમાત્રની રક્ષા કરનારા, ઘૃણા રહિત ઉત્કૃષ્ટ વ્યુત્સર્ગ સમિતિથી દયાને પુષ્ટ કરવાવાળા તથા ઇન્દ્રિયોને વશમાં કરનારા ધન્ય મુનિરાજ મારી પૂજાનો સ્વીકાર કરો. ॥૦૮॥૧૦॥

भावार्थ :– जो नासिका, नेत्र, गुदा, लिंग आदि स्थान से मल के निष्कासन की विधि से शास्त्र के अनुकूल, अन्य प्राणी मात्र की रक्षा करने वाले, घृणा रहित उत्कृष्ट व्युत्सर्गसमिति से दया को पुष्ट करने वाले तथा इन्द्रियों को वश में करने वाले धन्य मुनिराज मेरी पूजा को स्वीकार करें। ॥०८॥१०॥

स्पर्शन इन्द्रिय

॥०८॥११॥

उष्ण: शीतो मृदुलकठिनौ स्निग्धरुक्षौ गुरुर्वा
स्तोक: स्पर्शोऽष्टतय उदितस्पर्शनात् सप्रमादं ।
रागद्वेषावपि न दधतश्चेतनाचेतनेषु
किंच स्त्रीणां वपुषि विषये तान्यजेऽहं मुनींद्रान् ।।

ॐ ह्रीं स्पर्शेंद्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :–સ્પર્શ, ગરમ, ઠંડુ, કોમળ, કઠોર, ચીકણું, લૂખું, ભારે, હલકું આદિના ભેદથી આઠ પ્રકારનું છે. આથી સ્પર્શન ઇન્દ્રિયના પ્રમાદથી તથા ચેતન, અચેતન વિષયોમાં જેઓ રાગ-દ્વેષ ધારણ કરતાં નથી તથા સ્ત્રી શરીરમાં તો ક્યારેય પણ રાગ-દ્વેષ કરતાં નથી તેવા મુનિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૮॥૧૧॥

भावार्थ :–स्पर्श उष्ण, शीत, कोमल, कठिन, सचिक्कण, रुक्ष, भारी, हल्का आदि के भेद से आठ प्रकार का है अत: स्पर्शन इन्द्रिय के प्रमाद से तथा चेतन-अचेतन विषय में जो राग-द्वेष धारण नहीं करते एवं स्त्री शरीर में तो कभी भी राग-द्वेष नहीं करते ऐसे मुनियों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०८॥११॥

रसना इन्द्रिय

॥०८॥१२॥

मिष्टस्तिक्तो लवणकटकामम्ल एवं रसज्ञा-
ग्राही प्रोक्तो रसनविषयस्तत्र रागक्रुधोर्वा ।
त्यागात् सर्वप्रकृतिनियतेः पुदगलस्य स्वभावं
संजानंतो मुनिपरिवृढाः पांतु मामर्चितास्ते ।।

ॐ ह्रीं रसनेन्द्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– મીઠો, તીખો, ખારો, ખાટો, કડવો એ રસના ઈન્દ્રિયના વિષય છે, તેમાં રાગ-દ્વેષનો ત્યાગવાળા અને બધી વસ્તુઓની પ્રકૃતિના નિયમવાળા પુદ્ગલના સ્વભાવને જાણનારા મુનિઓની હું પૂજા કરું છું. તેઓ મારી રક્ષા કરે. ॥૦૮॥૧૨॥

भावार्थ :– मीठा, तिक्त, लवण, खट्टा, कडुवा ये रसना इन्द्रिय के विषय हैं उनमें राग-द्वेष का त्याग होने से और सभी वस्तुओं की प्रकृति के नियम वाले पुदगल के स्वभाव को जानने वाले मुनियों की मैं पूजा करता हूँ। वे मेरी रक्षा करें। ॥०८॥१२॥

घ्राण इन्द्रिय

॥०८॥१३॥

वातद्वेषस्तुहिनविकृतेरुष्णताद्वेष ऊष्म्य-
व्याप्तांगस्य प्रकृतिनियमात् सुप्रसिद्धोऽप्रतर्क्य: ।
साम्यस्वामी ह्यशुभसुभगद्वैधगंधौ विजानन्
वस्तुग्राहं भजति समतां तं यतींद्रं यजेऽहं ।।

ॐ ह्रीं घ्राणेन्द्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– શીત પ્રકૃતિવાળાને વાયુથી દ્વેષ છે અને ઉષ્ણ પ્રકૃતિવાળાને ઉષ્ણતાથી દ્વેષ છે, આ પ્રસિદ્ધ નિયમ સર્વત્ર તર્કને યોગ્ય નથી. કારણ કે સામ્યભાવના સ્વામી મુનિશ્વર શુભ-અશુભ બંને પ્રકારની ગંધની વસ્તુમાત્રમાં જાણતા થકા સમતાને ધારણ કરે છે. આવા મુનિન્દ્રોની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૧૩॥

भावार्थ :– शीत प्रकृति वाले को वात से द्वेष है और ऊष्ण प्रकृति वाले को ऊष्णता से द्वेष है, यह प्रसिद्ध नियम सर्वत्र तर्क के योग्य नहीं है क्योंकि साम्यभाव के स्वामी मुनीश्वर शुभ-अशुभ दोनों प्रकार की गंधों को वस्तु मात्र में जानते हुए समता को धारण करते हैं, ऐसे मुनीन्द्रों की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥१३॥

चक्षु इन्द्रिय

॥०८॥१४॥

यद्-यद्दृश्यं नयनविषये तेषु तेष्वात्मना वै
जन्माग्राहि त्रिजगदभितश्चक्रमावर्तपातात् ।
कृष्णे पीते हरिदरुणयोरर्जुने पौद्गलेक्ष्णो-
र्व्यापारोऽसन्निति परिणतः पूज्यतेऽसौ मयात्र ॥

ॐ ह्रीं चक्षुरिन्द्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– નેત્ર ઇન્દ્રિયથી જોવામાં આવવાવાળા વિષયોમાં, આત્માએ પંચ પરાવર્તનરૂપ સંસારમાં જન્મ ધારણ કર્યાં હોવાથી, નેત્ર ઈન્દ્રિયથી જાણવામાં આવતાં વિષયોમાં કાળા, પીળા, લીલા, લાલ, સફેદ પુદ્ગલોમાં નેત્રના વિકારરૂપ પરિણમન કરવું અસમીચીન છે, આ પ્રકારના પરિણામોને પ્રાપ્ત મુનીન્દ્રોની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૧૪॥

भावार्थ :– नेत्र इन्द्रिय से देखने में आने वाले विषयों में, आत्मा ने पंचपरावर्तन रूप संसार में जन्म ग्रहण किया है इसलिए काले, पीले, हरे, लाल, सफेद पुद्गलों में नेत्रों का विकाररूप परिणमन करना असमीचीन है इस प्रकार के परिणामों को प्राप्त मुनीन्द्रों की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥१४॥

कर्ण इन्द्रिय

॥०८॥१५॥

एक: स्तोत्रं रचयतु मुदा गद्यपद्यानवद्यै-
र्वाक्यैरन्य: श्वपच जननी तेऽद्य भार्या ममेति ।
श्रुत्वा शब्दं श्रवसि जडतामेत्य तोषं न कोपं
धत्ते शक्तोऽप्यमरमहितस्तस्य पूजां विदध्म: ।।

ॐ ह्रीं श्रोत्रेंद्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– એક વ્યક્તિ હર્ષપૂર્વક ગદ્ય-પદ્યના વાક્યોથી સ્તોત્રની નિર્દોષ રચના અર્થાત્ પ્રશંસા કરે છે અને કોઈ દુષ્ટ કહે છે કે 'અરે ચાંડાલ! તારી માતા મારી સ્ત્રી છે'. આ પ્રકારના શબ્દોને કાનથી સાંભળીને જાણે કે સાંભળ્યું જ ન હોય અને સંતોષ તથા ક્રોધને કરવામાં સમર્થ થઈને પણ કરતા નથી એવા દેવોથી પૂજ્ય મુનિઓની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૧૫॥

भावार्थ :– एक व्यक्ति हर्ष पूर्वक गद्य-पद्य के वाक्यों से स्तोत्र की निर्दोष रचना करता है भावार्थात् प्रशंसा करता है और कोई दुष्ट कहता है कि रे चांडाल ! तेरी माता मेरी स्त्री है इस प्रकार के शब्दों को कानों से सुनकर मानों सुना ही नहीं है और संतोष तथा क्रोध को करने में समर्थ होकर भी नहीं करते हैं, ऐसे देवों से पूज्य मुनियों की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥१५॥

सामायिक

॥०८॥१६॥

सांम्यं यस्य स्फुरति हृदये निर्व्यलीकं कदाचि
दायातेऽपि ध्रुवमशुभसमयाबद्धपाकावतारे
घोरापीडासदसि वपुषि स्पृड्-मृतिं संदधानो
बाहुभ्यामंबुधिमिव तरत्येष साधुर्मयार्च्यः ।।

ॐ ह्रीं सामायिकावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના હૃદયમાં નિષ્કપટ સામ્યભાવ સ્ફુરાયમાન છે અને નિશ્ચય અશુભ, સમયાબદ્ધ કર્મોનો ઉદય આગમનમાં આવતા છતાં પણ કદાચિત ઘોર પીડાના સ્થાનરૂપ શરીરમાં વાંછા તથા મરણમાં શરીરથી મમત્વનો ત્યાગ કરીને સમતા ધારણ કરનારા, ભૂજાઓથી સંસાર સમુદ્ર તરનારા સાધુઓની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૧૬॥

भावार्थ :– जिनके हृदय में निष्कपट साम्यभाव स्फुरायमान है और निश्चय अशुभ समयाबद्ध कर्मों के उदय के आगमन में आते हुए भी कदाचित् घोर पीड़ा के स्थान रूप शरीर में वांछा तथा मरण में शरीर से ममत्व को त्याग कर समता धारण करने वाले, भुजाओं से संसार समुद्र से तिरने वाले साधुओं की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥१६॥

वंदना

॥०८॥१७॥

स्मारं स्मारं प्रकृतिमहिमानं तु पंचेश्वराणां
प्रत्यक्षं वा मननविषयं वंदमानस्त्रिकालं ।
कर्मव्यूहक्षपणमसमं चर्करीत्यात्मवंतं
शुद्धस्फारं गमयति शिवं तं महांतं यजामि ।।

ॐ ह्रीं वंदनावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ પંચ પરમેષ્ઠીના સ્વભાવની મહિમાનું સ્મરણ કરીને પ્રત્યક્ષવત્ મનન કરીને ત્રિકાળ વંદના કરે છે અને કર્મોના સમૂહનો નાશ કરી આત્માને શુદ્ધ કરીને મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ કરાવે છે, તે મહાન સાધુઓની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૧૭॥

भावार्थ :– जो पंचपरमेष्ठी के स्वभाव की महिमा का स्मरण करके प्रत्यक्ष की तरह मनन करके त्रिकाल वंदना करते हैं एवं कर्मों के समूह का नाश कर आत्मा को शुद्ध करके मोक्षमार्ग में प्रवेश कराते हैं, उन महान् साधुओं की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥१७॥

स्तुति

॥०८॥१८॥

चेतोरक्ष:प्रसरणनिराकर्मणो तीर्थनाथ–
पादाब्जेषु प्रतिगुणगणे दत्तचित्तो मुनींद्रः ।
तेषां स्तोत्रं पठति परमानंदमात्मानुभावं
किं वा शुद्धं सृजति स मया पूज्यते तद् गुणाप्त्यै ।।

ॐ ह्रीं स्तवनावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જે મુનીન્દ્ર ચિત્તરૂપી રાક્ષસના ફેલાવાના નિરાકરણ માટે તીર્થંકરોના ચરણકમળમાં તથા તેમના ગુણોમાં મન લગાવે છે, તેમના સ્તોત્ર ભણે છે અથવા શુદ્ધ પરમાનંદરૂપ આત્મામાં રમે છે, તે સાધુઓના ગુણોની પ્રાપ્તિ માટે (અમે તેમની) પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૧૮॥

भावार्थ :– जो मुनीन्द्र चित्तरूपी राक्षस के फैलाव के निराकरण के लिए तीर्थंकरों के चरणकमलों में तथा उनके गुणों में मन को लगाते हैं, उनका स्तोत्र पढ़ते हैं अथवा शुद्ध परमानन्द रूप आत्मा में रमते हैं, हम उन साधु के गुणों की प्राप्ति के लिए पूजा करते हैं। ॥०८॥१८॥

॥०८॥१९॥

दोषाभावेऽप्यथ निशिदिवाहारनीहारकृत्ये
ज्ञाताज्ञातप्रमदवशतो जंतुरभ्यर्दितः स्यात् ।
नित्यं तस्य प्रतिभयलवं व्युत्सृजानः स्वयं यो
दोषव्रातैर्नहि जुडति तं धीरवीरं यजामि ।।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– કદાચિત દોષનો અભાવ હોવા છતાં પણ રાત-દિવસમાં, આહાર-નિહારમાં, જ્ઞાત-અજ્ઞાતભાવથી પ્રમાદવશ પ્રાણી કિંચિત્ પણ પીડિત થયો હોય તો પાપના ભયથી તેનું સ્મરણ કરીને નિત્ય આલોચના કરનારા સાધુ દોષોના સમૂહથી જોડાતા નથી, તે ધીર-વીર સાધુની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૧૯॥

भावार्थ :– कदाचित् दोष का अभाव होने पर भी रात-दिन में, आहार-नीहार में ज्ञात-अज्ञात भाव से प्रमादवश प्राणी किंचित् भी पीड़ित हुआ तो पाप के भय से उसका स्मरण करके नित्य आलोचना करने वाले साधु दोषों के समूह से जुड़ते नहीं है उन धीर-वीर साधु की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥१९॥

स्वाध्याय

॥०८॥२०॥

नित्यं चेत:कपिरचलतां नैति तद्यंत्रणार्थं
स्वाध्यायाख्यैः प्रगुणनिगडैर्बंधमानीय भद्रे ।
मार्गे युंज्याच्छ्रुतपरिणतात्मीयमोदावधानो
वृत्तिं शुद्धां श्रयति स महानर्घ्यतेऽनर्घ्यबुद्धिः ।।

ॐ ह्रीं स्वाध्यायावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– નિત્ય જ આ મનરૂપી મર્કટ નિશ્ચલપણાને પ્રાપ્ત થતું નથી. તેને વશ કરવા માટે સ્વાધ્યાયરૂપી સાંકળથી બંધનમાં નાખીને, મોક્ષમાર્ગમાં લગાવીએ છે અને શ્રુતરૂપ પરિણત આત્માના આનંદમાં સાવધાન થતાં શુદ્ધ વૃત્તિનો આશ્રય કરે છે. આ રીતની અમૂલ્ય બુદ્ધિવાળા સાધુઓની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૨૦॥

भावार्थ :– नित्य ही यह मनरूपी मर्कट निश्चलपने को प्राप्त नहीं होता है उसको वश में करने के लिए स्वाध्याय रूपी साँकलों से बंधन में डालकर मोक्षमार्ग में लगाते हैं और श्रुतरूप परिणत आत्मा के आनंद में सावधान होते हुए शुद्धवृत्ति का आश्रय करते हैं, इस प्रकार की अमूल्य बुद्धि वाले साधुओं की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥२०॥

व्युत्सर्ग/कायोत्सर्ग

॥०८॥२१॥

आमे भांडे कुथितकुणपे यादृशी नश्यहेय–
बुद्धिः काये सततनियता वीतरागेश्वराणां ।
व्यक्तीकर्तुं शिखरिविपिनांतस्तनोर्निममत्वे
कायोत्सर्गं रचयति मुनिः सोऽत्रपूजां प्रयातु ।।

ॐ ह्रीं व्युत्सर्गावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं ।

ભાવાર્થ :– રાગ સહિત મુનીશ્વરોને જે રીતે કાચા માટીના વાસણમાં અને સડેલા મૃતક શરીરમાં હેયબુદ્ધિ થાય છે તેવી જ રીતે શરીરમાં નશ્વર અને હેયબુદ્ધિ થાય છે. તેને પ્રગટ કરવા માટે પર્વત પર, ઘોર જંગલમાં શરીરથી નિર્મમત્વ થઈને કાયોત્સર્ગ કરે છે, તે મુનિઓની અમે અહીં પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૨૧॥

भावार्थ :– राग सहित मुनीश्वरों के जिस प्रकार कच्चे मिट्टी के बर्तन में और सड़े मृतक शरीर में हेय बुद्धि होती है उसी प्रकार शरीर में नश्वर और हेय बुद्धि होती है, उसको प्रकट करने के लिए, पर्वत पर, घोर जंगल में शरीर से निर्ममत्व होकर कायोत्सर्ग करते हैं, उन मुनियों की हम यहाँ पूजा करते हैं। ॥०८॥२१॥

भू-शयन

॥०८॥२२॥

पूर्वं हर्म्ये मणिगणचितानेकपर्यंकशायी
सोऽयं घोरस्वनमृगपतित्रस्तनागेंद्रकारे ।
भूध्रग्रावोपरितनभुवि स्वप्नवत्किंचिदात्त–
निद्रो यस्य स्मरणमपि संहंति पापं स मेऽर्च्यः ।।

ॐ ह्रीं भूशयननियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ પહેલાં રાજ્યાવસ્થામાં મણિરત્નોથી ખચિત અનેક શય્યાસનોમાં શયન કરતાં હતા તે જ હવે જ્યાં ભયંકર ત્રાડ પાડનારા સિંહોથી, કાળા હાથી કંપાયમાન થાય એવા અંધકારમાં પત્થર ઉપર, પૃથ્વી ઉપર સ્વપ્ન સમાન થોડી નિદ્રા લે છે, જેમનું સ્મરણ પણ પાપનું નાશ કરનારું છે એવા સાધુઓની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૨૨॥

भावार्थ :– जो पहले राज्यावस्था में मणिरत्नों से खचित अनेक शय्यासनों में शयन करते थे वे ही अब जहाँ पर घोर दहाड़ वाले सिंहों से काले हाथी कम्पायमान हैं ऐसे अंधकार में पत्थरों के ऊपर, पृथ्वी पर स्वप्न के समान थोड़ी निद्रा लेते हैं । जिनका स्मरण भी पापों का नाश करने वाला है, उन साधुओं की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥२२॥

अस्नान

॥०८॥२३॥

ग्रीष्मे रेणूत्करविकरणव्यग्रवातप्रसर्पद्–
धूलिपुंजे मलिनवपुषि त्यक्तसंस्कारवांछः ।
अस्नानत्वं विजनसरसीसंनिधानेऽपि येषां
तेषां पादांबुजयुगमहं पारिजातैरुदर्चे ।।

ॐ ह्रीं अस्नाननियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ગ્રીષ્મઋતુમાં ધૂળની ઝાપટથી ઉડેલા કચરાથી, વંટોળિયાથી ફેલાયેલા ધૂળના કણોથી જેમનું શરીર મલિન છે, જેઓ શરીર-સ્નાન સંસ્કારના ત્યાગી છે, નિર્જન સ્થાન પર બાજુમાં ભરેલું સરોવર હોવા છતાં પણ સ્નાનની વાંછાથી રહિત મુનિઓના યુગલ ચરણારવિંદની દેવોપુનિત પુષ્પોથી અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૨૩॥

भावार्थ :– ग्रीष्म ऋतु में धूलि के समूह से बिखरे कचरे से, व्यग्र वायु से फैले धूलि के कणों से जिनका शरीर मलिन है, जो शरीर स्नान संस्कार के त्यागी हैं, निर्जन स्थान पर पास में भरे सरोवर होने पर भी स्नान की वांछा से रहित मुनियों के युगल चरणारविंद की देवोपुनीत पुष्पों से हम पूजा करते है। ॥०८॥२३॥

वस्त्र परित्याग (नग्न)

॥०८॥२४॥

वाल्कं फालं वसनमुपसंव्यानकोपीनखंड-
कादाचित्केऽप्युपधिसमये नैव वांछंस्तपस्वी ।
दैगंबर्यं परमकुशलं जातरूपप्रबुद्धं
संधार्यैवं नयति परमानंदधात्रीं तमर्चे ।।

ॐ ह्रीं सर्वथावस्त्रपरित्यागनियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– વૃક્ષોના વક્કલસંબંધી તથા ફળ(કપાસ) સંબંધી ધોતી, દુપટ્ટા, કોપીન ખંડ આદિ વસ્ત્રોની દુઃખના સમયમાં પણ જેઓ વાંછા કરતાં નથી એવા પરમ તપસ્વી દિગંબર જાતરૂપ મુદ્રાના ધારી પરમાનંદને પ્રાપ્ત થનારા સાધુઓની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૨૪॥

भावार्थ :– वृक्षों के वक्कल संबंधी तथा फल (कपास) संबंधी धोती, दुपट्टा, कोपीन खंड आदि वस्त्रों की दुःख के समय में भी जो वांछा नहीं करते, ऐसे परम तपस्वी दिगम्बर जातरूप मुद्रा के धारी परमानंद को प्राप्त होने वाले साधुओं की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥२४॥

केशलोंचन

॥०८॥२५॥

क्षौरं शस्त्रोज्जनिवशपराधीनतापात्रमेव
जूडा मूर्धन्यतुलकृमिदा भूतशीर्षाकृतिस्था ।
दोषायैवेति विहितकचोत्पाटनो मुष्टिमात्रात्
साक्षान्मोक्षाध्वनिधृतिपदः पूज्यते श्रौतकर्मा ।।

ॐ ह्रीं कृतकेशलोचनियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

ભાવાર્થ :– ક્ષૌરકર્મ શસ્ત્ર દ્વારા થાય છે તેથી આ પરાધીનતાનું કાર્ય છે, મસ્તક પર જટા રાખવાથી જૂ આદિ અનેક જીવોની ઉત્પત્તિ થાય છે અને ભૂત જેવી મસ્તકની આકૃતિ લાગે છે, તેથી મુઠ્ઠી માત્રથી કેશનું લોંચ કરીને સાક્ષાત્ મોક્ષમાર્ગને ધારણ કરનારા શ્રુતસંબંધી કર્મના ધારી સાધુઓની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૨૫॥

भावार्थ :– क्षौरकर्म शस्त्र के द्वारा होता है अत: यह पराधीनता का कार्य है, मस्तक पर जटा-जूट रखने से जूँ आदि अनेक जीवों की उत्पत्ति होती है एवं भूतों जैसी मस्तक की आकृति लगती है, इसलिए, मुठ्ठी मात्र से केशों का लुंचन करके साक्षात् मोक्षमार्ग को धारण करने वाले श्रुत संबंधी कर्म के धारी साधुओं की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥२५॥

अदन्त धोबन

॥०८॥२६॥

एकद्वित्रिप्रभृतिदिवसप्रोषधादिप्रकर्तु-
रास्यम्लानिर्भवति नितरां दंतशुद्धिं विनाऽत्र ।
दौर्गंध्यांधुं वपुषमकृतस्थैर्यमापन्निदानं
जानन् योगं मलिनयति नो तं समर्चे मुनींद्रं ।।

ॐ ह्रीं दंतधावनवर्जननियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– દંતશુદ્ધિ વિના એક, બે, ત્રણ આદિ દિવસમાં પ્રોષધોપવાસ કરનારના મુખની મલિનતા નિરંતર થાય છે અને શરીરને દુર્ગંધનો કૂવો, સ્થિરતા રહિત, આપત્તિનું સ્થાન છે એવું જાણવા છતાં પણ જેઓ મન, વચન, કાયાથી ધ્યાનને મલિન કરતા નથી, તે મુનીન્દ્રોની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૨૬॥

भावार्थ :– दंत शुद्धि के बिना एक दो, तीन आदि दिन में प्रोषधोपवास करने वालों के मुख की मलिनता निरंतर होती है और शरीर को दुर्गन्ध का कुआँ, स्थिरता रहित, आपत्ति का स्थान जानते हुए भी जो मन-वचन-काय से ध्यान को मलिन नहीं करते, उन मुनीन्द्रों की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥२६॥

एक भुक्ति

॥०८॥२७॥

यांचादैन्योदरविघटनादींगितादीनि येषां
निर्मूलंतो मनसि चमनालाभलाभांतराये ।
तुल्या दृष्टिस्तदपि सकृदेकाह्निभुक्तिप्रमाणं
तेषां धर्म्यावगमसुगमत्वाय पादौ यजामि ।।

ॐ ह्रीं एकभक्तनियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમને યાચના, દીનતા અને ઉદરનું કૃષપણું આદિ દેખાડવાની ચેષ્ટાનો અભાવ છે અને મનમાં ભોજનના અંતમાં કોગળા અથવા ભોજનનો અલાભ–અંતરાયમાં સમાન દૃષ્ટિ છે તથા ધર્મધ્યાનની સુગમતા માટે દિવસમાં એકવાર ભોજન કરવાનું પ્રમાણ છે, તે સાધુઓના ચરણોની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૨૭॥

भावार्थ :– जिनके याचना, दीनता और उदर के कृशपने आदि को दिखाने की चेष्टा का अभाव है और मन में भोजन के अंत में कुल्ला या भोजन का अलाभ (अन्तराय) में तुल्य दृष्टि है तथा धर्मध्यान की सुगमता के लिए दिन में एक बार भोजन करने का प्रमाण है, उन साधुओं के चरणों की हम पूजा करते हैं। ॥०८॥२७॥

खडे होकर आहार लेना

॥०८॥२८॥

यावद्देहं स्थितिधृतिधराशक्तिमंगीकरोति
यावज्जंघाबलमचलतां नोज्जिहीते मुनित्वे ।
यावत्स्थाप्ये तदपगमने भोजनत्याग एवं
संन्यासस्य ग्रहणमिति यद् यस्य नीतिस्तमर्चे ।।

ॐ ह्रीं आस्थितभोजननियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જ્યાં સુધી આ શરીર સ્થિતિ, ધૈર્ય અને ગમનની શક્તિને અંગીકાર કરે છે, જ્યાં સુધી જાંઘનું બળ અચળ છે હું ત્યાં સુધી મુનિપણામાં સ્થિત રહીશ અને પૂર્વોક્ત સ્થિતિના અભાવમાં ભોજનનો ત્યાગ કરીને સંલેખના ગ્રહણ કરીશ. આ પ્રકારે જેમની નીતિ છે તે મુનિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૮॥૨૮॥

भावार्थ :– जब तक यह शरीर स्थिति, धैर्य और गमन की शक्ति को अंगीकार करता है जब तक जंघाओं का बल अचल है, मैं तभी तक मुनिपने में स्थित रहूँ।गा एवं पूर्वोक्त स्थिति के अभाव में भोजन का त्याग करके सल्लेखना ग्रहण करूँगा इस प्रकार की जिनकी नीति है, मैं उन मुनियों की पूजा करता हूँ। ॥०८॥२८॥

सामुहिक अर्घ

॥०८॥२९॥

अष्टाविंशतिसद्गुणग्रथितसद्-रत्नत्रयाभूषणं
शीलेशित्वतनुत्ररक्षितवपुः कामेषुभिर्नाहतं ।
आर्हंत्यादिपदस्य वीजमनघं येषां परं पावनं
साधूनां समुदायमुत्तमकुलालंकारमाशाश्महे ।।

ॐ ह्रीं अस्मिन् बिंबप्रतिष्ठोत्सवे मुख्यपूजार्ह-
अष्टमवलयोन्मुद्रितसाधु परमेष्ठिभ्यस्तन्मूलगुणग्रामेभ्यश्च पूर्णार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમનું રત્નત્રયરૂપી આભૂષણ અઠ્યાવીસ મૂળગુણોથી ગૂંથાયેલું છે, જેમનું શરીર શીલના સ્વામીપણારૂપ કવચથી રક્ષિત હોવાથી કામના બાણોથી હરાયું નથી એવા અરિહંત આદિ પદવીના બીજરૂપ અને નિર્મળ પરમ પવિત્ર ઉત્તમકુળના ભૂષણ સાધુઓના સંઘની અમે વાંછા કરીએ છીએ. ॥૦૮॥૨૯॥

भावार्थ :– जिनका रत्नत्रयरूपी आभूषण अट्ठाईस मूलगुणों से गुंफित है, जिनका शरीर शील के स्वामीपनेरूप कवच से रक्षित होने से काम के बाणों से हराया नहीं गया है, ऐसे अर्हंत आदि पदवी के बीजरूप और निर्मल परम पवित्र उत्तम कुल के भूषण साधुओं के संघ की हम वांछा करते हैं। ॥०८॥२९॥

नवम वलय परिचय

वलय में अर्घ्य की संख्या : ४८ (६४ ऋद्धिधारी मुनिराजो के अर्घ्य)

वलय का विषय एवं संक्षिप्त परिचय : भावलिंगी मुनिराज तथा गणधर जिन्हें विशेष विशुद्धि और तपश्चरण के प्रभाव से चमत्कारीय ऋद्धियाँ प्रगट होती हैं, उन ऋद्धियो में से :-
बुद्धि ऋद्धि के १८ भेद, विक्रिया के ११ भेद के २ अर्घ्य, चारणऋद्धि के ९ भेद के २ अर्घ्य, तप ऋद्धि के ७ भेद, बल ऋद्धि के ३ भेद, औषधि ऋद्धि के ८ भेद, रस ऋद्धि के ६ भेद और क्षेत्र ऋद्धि के २ भेद एस प्रकार ४८ अर्घ्य समर्पित किए गये है

वलय एवं अर्घ्य का दृशिकरण : गणधर भगवान उत्कृष्ट त्रेसठ ऋद्धि के धारी होते है एवं कुछ मुनिराज अनेक ऋद्धि के धारी होने पर भी अपने शक्ति का उपयोग नहीं करते और अपने ज्ञान-ध्यान-विरक्तता मैं सदैव रत रहते हैं। पौराणिक एवं आगम सम्मत दृशीकरण के माध्यम से मुनिराज की परिणती तथा विभिन्न बल के विशेष सामर्थ्य को एनीमेशन द्वारा दर्शाया है।

केवलज्ञान लब्धि

॥०९॥०१॥

त्रैलौक्यवर्तिसकलं गुणपर्ययाढ्यं
यस्मिन्करामलकवत् प्रतिवस्तुजातं ।
आभासते त्रिसमयप्रतिबद्धमर्चे
कैवल्यभानुमधिपं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥

ॐ ह्रीं सकललोकालोकप्रकाशकनिरावरण-
कैवल्यलब्धिधारकेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– હાથમાં રાખેલ આંબળાની જેમ ત્રણ લોક ને ત્રણ કાળના સમસ્ત પદાર્થો ગુણ ને પર્યાયો સહિત જેમના જ્ઞાનમાં પ્રતિભાસિત થાય છે, તે કેવળજ્ઞાનરૂપી સૂર્યના સ્વામીની અમે મસ્તક નમાવીને પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૦૧॥

भावार्थ :– जिनके ज्ञान में तीनलोक और तीनकाल के समस्त पदार्थ गुण तथा पर्यायों सहित हाथ में रखे आंवले की भाँति प्रतिभासित होते हैं, उन केवलज्ञानरूपी सूर्य के स्वामी की हम मस्तक झुका कर पूजा करते हैं। ॥०९॥०१॥

मन:पर्ययज्ञान

॥०९॥०२॥

वक्रर्जुभावघटितापरचित्तवर्ति
भावावभासनपरं विपुलर्जुभेदात् ।
ज्ञानं मनोऽधिगतपर्ययमस्य जातं
तं पूजयामि जलचंदनपुष्पदीपैः ॥

ॐ ह्रीं ऋजुमतिविपुलमतिमनःपर्ययधारकेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– વક્ર અને સરળભાવોથી ઘટિત પરના મનમાં થનારા ભાવોને જાણવાનું સામર્થ્ય ધરાવનાર વિપુલમતિ અને ઋજુમતિ મન:પર્યયજ્ઞાનવાળા મુનિઓની હું જળ, ચંદન, પુષ્પ, દીપ આદિથી પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૦૨॥

भावार्थ :– वक्र और सरल भावों से घटित पर के मन में होने वाले भावों को प्रकाशित करने में तत्पर ऐसे विपुल मति और ऋजुमति मन: पर्ययज्ञान वाले मुनियों की मैं जल, चंदन, पुष्प, दीप आदि से पूजा करता हूँ। ॥०९॥०२॥

अवधिज्ञान

॥०९॥०३॥

देशावधिं च परमावधिमेव सर्वा
वध्यादिभेदमतुलावमदेशपृक्तं ।
ज्ञानं निरूप्य तदवाप्तियुतं मुनींद्रं
संपूज्य चित्तभवसंशयमाहरामि ॥

ॐ ह्रीं अवधिज्ञानधारकेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– દેશાવધિ, પરમાવધિ અને સર્વાવધિ આદિના ભેદ સહિત, નિકટવર્તી કે દૂરવર્તી પદાર્થોનું જ્ઞાનથી નિરૂપણ કરનારા જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કરનારા મુનીન્દ્રોની હું પૂજા કરીને, મનમાં ઉત્પન્ન સંદેહને દૂર કરું છું. ॥૦૯॥૦૩॥

भावार्थ :– देशावधि, परमावधि और सर्वावधि आदि के भेद सहित पास या दूर क्षेत्र में स्थित पदार्थों को ज्ञान से निरूपण कर उस ज्ञान की प्राप्ति करने वाले मुनीद्रों की मैं पूजा करके मन में उत्पन्न संदेह को दूर करता हूँ। ॥०९॥०३॥

कोष्ठबुद्धि

॥०९॥०४॥

अन्योपदेशमनपेक्ष्य यथा सुकोष्ठे
वीजानि तद् गृहपतिर्विनियुज्यमानः।
ग्रंथार्थवीजबहुलान्यनतिक्रमाणि
संधारयन्नृषिवरोऽर्च्यत उवक्थमंत्रैः॥

ॐ ह्रीं कोष्ठबुद्ध्यर्धिप्राप्तेभ्योर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેવી રીતે ઘરના સ્વામી બીજાના ઉપદેશ વિના સુંદર કોઠામાં સ્થિત બીજને જાણે છે, તેવી જ રીતે બીજબહુલ ગ્રંથના ભાવાર્થનું અતિક્રમણ કર્યા વિના ધારણ કરનારા મુનિઓની હું આચાર્યપ્રણિત મંત્રોથી પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૦૪॥

भावार्थ :– जिस प्रकार घर का स्वामी दूसरे के उपदेश के बिना सुन्दर कोठे में स्थित बीजों को जानता है, उसी प्रकार बीज बहुल ग्रन्थ के भावार्थ का अतिक्रमण किये बिना धारण करने वाले मुनियों की मैं आचार्य प्रणीत मंत्रों से पूजा करता हूँ। ॥०९॥०४॥

पादानुसारिणी

॥०९॥०५॥

एकं पदार्थमुपगृह्य मुखांतमध्य
स्थानेषु तच्छ्रुतसमस्तपदग्रहोक्तिम् ।
पादानुसारिधिषणाद्यभियोगभाजां
संपूज्य तन्मतिधरं तु समर्चयामि ॥

ॐ ह्रीं पादानुसारिबुद्धिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– આદિ, મધ્ય અથવા અંતના કોઈ એક પદને ગ્રહણ કરીને સમસ્ત શ્રુતને જાણવાની તથા તેને કહેવાવાળી પાદાનુસારી ઋદ્ધિની પૂજા કરીને આ ઋદ્ધિના ધારક મુનિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૦૫॥

भावार्थ :– आदि, मध्य या अन्त के किसी एक पद को ग्रहण करके समस्त श्रुत को जानने की एवं उसे कहने वाली पादानुसारीऋद्धि की पूजा करके इस ऋद्धि के धारक मुनियों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०९॥०५॥

बीजबुद्धि

॥०९॥०६॥

कालादियोगमनुसृत्य यथाप्तमत्र
कोटिप्रदं भवति वीजमनिंद्रियादि ।
वीर्यांतरायशमनक्षयहेत्वनेक
पादावधारणमतीन् परिपूजयामि ॥

ॐ ह्रीं बीजबुद्धिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- જેવી રીતે વાવેલું બીજ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ આદિના યોગથી કરોડો બીજ દેનારું થાય છે, તેવી જ રીતે બીજબુદ્ધિ પ્રાપ્ત સાધુને વીર્યાન્તરાય કર્મના ઉપશમન તેમજ ક્ષયથી અનેક પદોની પ્રાપ્તિ થાય છે, તેની આપણે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૦૬॥

भावार्थ :- जैसे बोया हुआ बीज द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि के योग से करोड़ों बीज देने वाला होता है वैसे ही बीजबुद्धि प्राप्तसाधु को वीर्यान्तराय कर्म के उपशमन एवं क्षय से अनेक पदों की प्राप्ति होती है उनकी हम पूजा करते हैं। ॥०९॥०६॥

संभिन्नश्रोतृत्व

॥०९॥०७॥

ये चक्रिसैन्यगजवाजिखरोष्ट्रमर्त्य
नानाविधस्वनगणं युगपत् पृथक्त्वात् ।
गृह्णंति कर्णपरिणामवशान्मुनींद्रा
स्तानर्घयामि क्रतुभागसमर्पणेन ॥

ॐ ह्रीं संभिन्नश्रोत्रऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ચક્રવર્તીની સેનાના ખર (ગધેડા), હાથી, ઘોડા, ઊંટ મનુષ્ય આદિના અનેક પ્રકારના સ્વર અને શબ્દ સમૂહને એક સમયમાં કર્ણ ઇન્દ્રિય દ્વારા અલગ-અલગ ગ્રહણ કરનારા મુનિઓને આ યજ્ઞભાગમાં અર્ઘ્ય સમર્પણ કરીને પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૦૭॥

भावार्थ :– चक्रवर्ती की सेना के खर, गज, घोड़ा, ऊँट, मनुष्य आदि के नाना प्रकार के स्वर एवं शब्द समूह को एक समय में कर्ण इन्द्रिय के द्वारा अलग-अलग ग्रहण करने वाले मुनियों को इस यज्ञ भाग में अर्घ समर्पणकर पूजा करता हूँ। ॥०९॥०७॥

दूरस्पर्शन

॥०९॥०८॥

दूरस्थितान्यपि सुमेरुविधुप्रभास्वत्
सन्मंडलानि करपादनखांगुलीभिः ।
संस्पर्शशक्तिसहितर्द्धिवशात् स्पृशंत
स्तान् शक्तियुक्तपरिणामगतान् यजामि॥

ॐ ह्रीं दूरस्पर्शशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– દૂર પ્રદેશમાં સ્થિત હોવા છતાં પણ સુમેરુ, ચંદ્રમા, સૂર્યમંડળને ઋદ્ધિ વશ હાથ, પગ, નખ, આંગળી આદિ દ્વારા સ્પર્શ કરવાની શક્તિયુક્ત તથા તે રૂપ પરિણમન શક્તિને પ્રાપ્ત સાધુઓની આપણે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૦૮॥

भावार्थः–दूर प्रदेश में स्थित होने पर भी सुमेरु, चन्द्रमा, सूर्यमण्डल को ऋद्धि के वश से हाथ, पैर, नाखून, अंगुली आदि के द्वारा स्पर्श करने की शक्तियुक्त एवं उस रूप परिणमन को प्राप्त साधुओं की हम पूजा करते हैं। ॥०९॥०८॥

दूरास्वादन

॥०९॥०९॥

नास्वादयंति न च तत्स्वदने समीहा
तत्रापि शक्तिरमितेति रसग्रहादौ ।
ऋद्धिप्रवृद्धिसहितात्मगुणान् सुदूर
स्वादावभासनपरान् गणपान् यजामि॥

ॐ ह्रीं दूरास्वादनशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જે મુનીન્દ્ર ન તો સ્વયં સ્વાદ લે છે અને ન તો સ્વાદ લેવાની ઇચ્છા છે છતાં પણ તે રસને ગ્રહણ કરવાની શક્તિ પ્રબળ હોય છે તથા તે ઋદ્ધિની વૃદ્ધિ સહિત આત્મગુણયુક્ત દુરાસ્વાદનમાં સમર્થ મુનીન્દ્રોની આપણે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૦૯॥

भावार्थ :– जो मुनीन्द्र न तो स्वयं स्वाद लेते हैं और न स्वाद लेने की वांछा है, तो भी उस रस को ग्रहण करने की शक्ति प्रबल होती है तथा उस ऋद्धि की वृद्धि सहित आत्मगुण युक्त दूरास्वादन में समर्थ मुनीन्द्रों की हम पूजा करते हैं। ॥०९॥०९॥

दूराघ्राण

॥०९॥१०॥

उत्कृष्टनासिकहृषीकगतिं विहाय
तत्स्थोर्ध्वगंधसमवायनशक्तियुक्तान् ।
उत्कृष्टभागपरिणामविधौ सुदूर
गंधावभासनमतौ नियतान् यजामि ॥

ॐ ह्रीं दूरघ्राणविषयग्राहकशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम्।

ભાવાર્થ :– નાસિકા ઇન્દ્રિયની ઉત્કૃષ્ટ ગતિને છોડીને તેનાથી પણ અધિક સ્થાનથી ગંધ ગ્રહણની શક્તિ યુક્ત અને ઉત્કૃષ્ટ ગંધના અનુભાગના પરિણામથી દૂરથી જ ગંધની અવભાસના કરનારા પ્રસિદ્ધ સાધુઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૧૦॥

भावार्थ :– नासिका इन्द्रिय की उत्कृष्ट गति को छोड़कर उससे भी अधिक स्थान से गंध ग्रहण की शक्ति युक्त एवं उत्कृष्ट गंध के अनुभाग के परिणाम से दूर से ही गंध की अवभासना करने वाले प्रसिद्ध साधुओं की मैं पूजा करता हूँ। ॥०९॥१०॥

दूरावलोकन

॥०९॥११॥

निर्णीतपूर्णनयनोत्थहृषीकवार्ता
चक्रेश्वरस्य नियता तदधिक्यभावात् ।
दूरावलोकनजशक्तियुतान् यजामि
देवेंद्रचक्रधरणींद्रसमर्चितांह्रीन् ॥

ॐ ह्रीं दूरावलोकनशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– પરિપૂર્ણ ચક્રવર્તીના નેત્ર ઇન્દ્રિયના ઉત્કૃષ્ટ વિષયથી પણ અધિક દૂરથી જોવાની શક્તિથી સહિત તથા દેવેન્દ્ર, ચક્રવર્તી, ધરણેન્દ્રથી પૂજિત છે ચરણ જેમના એવા મુનીન્દ્રોની પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૧૧॥

भावार्थ :– परिपूर्ण चक्रवर्ती के नेत्र इन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय से भी अधिक दूर से देखने की शक्ति से सहित तथा देवेन्द्र,चक्रवर्ती, धरणेन्द्र से पूजित हैं चरण जिनके ऐसे मुनीन्द्रों की पूजा करता हूँ। ॥०९॥११॥

दूरश्रवण

॥०९॥१२॥

श्रोत्रेंद्रियस्य नवयोजनशक्तिरिष्टा
नात: परं तदधिकावनिसंस्थशब्दान् ।
श्रोतुं प्रशक्तिरुदयत्यतिशायिनी च
येषां तु पादजलजाश्रयणं करोमि ॥

ॐ ह्रीं दूरश्रवणशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– કર્ણ ઈન્દ્રિયની ઉત્કૃષ્ટ શક્તિ નવ યોજન પ્રમાણ માનવામાં આવી છે અને તેનાથી વધારે દૂર પૃથ્વીમાં રહેનારા શબ્દોને સાંભળવાની અતિશય શક્તિ જેમને પ્રાપ્ત છે, તે સાધુઓના ચરણકમળનો અમે આશ્રય લઈએ છીએ. ॥૦૯॥૧૨॥

भावार्थ :– कर्ण इन्द्रिय की उत्कृष्ट नव योजन प्रमाण शक्ति मानी गयी है और उससे अधिक पृथ्वी में रहने वाले शब्दोंको सुनने की अतिशय शक्ति जिनको प्राप्त है, उन साधुओं के चरणकमल का हम आश्रय लेते हैं। ॥०९॥१२॥

दशपूर्वित्व

॥०९॥१३॥

अभ्यासयोगविहृतावपि यन्मुहूँर्त
मात्रेण पाठयति दिक्प्रमपूर्वसार्थं ।
शब्देन चार्थपरिभावनया श्रुतं त
च्छक्तिप्रभूनधियजामि मखस्य सिद्धयै ॥

ॐ ह्रीं दशपूर्वित्वऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- અભ્યાસ વિના જ જે મુહૂર્ત માત્રમાં દશ પૂર્વને ભણાવેછે, શબ્દ અને ભાવાર્થની ભાવનાથી તે શ્રુતની શક્તિ સંયુક્ત મુનિઓની યજ્ઞની સિદ્ધિ માટે પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૧૩॥

भावार्थ :- अभ्यास के बिना ही जो मुहूँर्त मात्र में दश पूर्व को पढ़ाते हैं, शब्द और भावार्थ की भावना से उस श्रुत की शक्ति संयुक्त मुनियों की यज्ञ की सिद्धि के लिए पूजा करता हूँ। ॥०९॥१३॥

चतुर्दिश पूर्वित्व

॥०९॥१४॥

एवं चतुर्दशसुपूर्वगतश्रुतार्थं
शब्देन ये ह्यमितशक्तिमुदाहरंति ।
तानत्र शास्त्रपरिलब्धिविधानभूति
संपत्तयेऽहमधुनार्हणया धिनोमि ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशपूर्वित्वऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– આ રીતે ચૌદ પૂર્વગત શ્રુતના ભાવાર્થને જેઓ શબ્દ સહિત ઉચ્ચારણ કરે છે તેમને અમે શાસ્ત્રરૂપી સંપત્તિના જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ માટે પૂજા કરીને પ્રસન્ન કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૧૪॥

भावार्थ :– इसी प्रकार चौदह पूर्वगत श्रुत के भावार्थ को जो शब्द सहित उच्चारण करते हैं उनको हम शास्त्ररूपी संपत्ति ज्ञान की प्राप्ति के लिए पूजा कर प्रसन्न करते हैं। ॥०९॥१४॥

प्रत्येक बुद्धि

॥०९॥१५॥

अन्योपदेशविरहेऽपि सुसंयमस्य
चारित्रकोटिविधय: स्वयमुद्भवंति ।
प्रत्येकबुद्धमतय: खलु ते प्रशस्या
स्तेषां मनाक् स्मरणतो मम पापनाश: ॥

ॐ ह्रीं प्रत्येकबुद्धत्वऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– અન્યના ઉપદેશ વિના સંયમ અને ચારિત્રના ભેદોને જેઓ સ્વયં ધારણ કરે છે, તે પ્રત્યેક બુદ્ધિમતિવાળા ઋષિ કહેવાય છે. તેમના સ્મરણ અને પ્રશંસાથી મારા પાપોનો નાશ થાય છે. ॥૦૯॥૧૫॥

भावार्थ :– अन्य के उपदेश के बिना संयम और चारित्र के भेदों को जो स्वयं धारण करते हैं, वे प्रत्येक बुद्धिमति वाले ऋषि कहलाते हैं उनकी किंचित् स्मरण व प्रशंसा से मेरेपापों का नाश होता है। ॥०९॥१५॥

वदित्त्व ऋद्धि

॥०९॥१६॥

न्यायागमस्मृतिपुराणपठित्यभावेऽ
प्याविर्भवंति परवादविदारणोद्धाः ।
वादित्वबुद्धय इति श्रमणाः स्वधर्मं
निर्वाहयंति समये खलु तान् यजामि॥

ॐ ह्रीं वादित्वऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જે ન્યાય, આગમ, સ્મૃતિ, પુરાણ વાંચ્યા વિના જ પરવાદીઓના માનને ખંડિત કરે છે, પોતાના ધર્મનો નિર્વાહ કરનારા વાદિત્વબુદ્ધિ સંયુક્ત મુનિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૧૬॥

भावार्थ :– जो न्याय आगम स्मृति पुराणों के पढ़े बिना भी परवादियों के मान को विदीर्ण करते हैं अपने धर्म का निर्वाह करने वाले वादित्व बुद्धि संयुक्त मुनियों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०९॥१६॥

जल चारण

॥०९॥१७॥

जंघाग्निहेतिकुसुमच्छदतंतुवीज
श्रेणीसमाजगमना इति चारणांका: ।
ऋद्धिक्रियापरिणता मुनय: स्वशक्ति
संभावितास्त इह पूजनमालभंतु ॥

ॐ ह्रीं जलजंघातंतुपुष्पपत्रवीजश्रेणीवह्न्यादिनिमित्ताश्रय-चारणऋद्धि प्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જંઘાચારણ, અગ્નિશિખાચારણ, પુષ્પચારણ, પત્રચારણ, તંતુચારણ, બીજચારણ, શ્રેણીચારણ ઋદ્ધિક્રિયાથી પરિણત મુનિ અને પોતાની શક્તિની સંભાવનાથી યુક્ત મુનિઓની હું અહીં યજ્ઞમાં પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૧૭॥

भावार्थ :– जंघाचारण, अग्निशिखाचारण, पुष्पचारण, पत्रचारण, तंतुचारण, बीजचारण, श्रेणीचारण ऋद्धि क्रिया से परिणत मुनि व अपनी शक्ति की संभावना से युक्त मुनियों की मैं यहाँ यज्ञ में पूजा करता हूँ। ॥०९॥१७॥

नभचारण

॥०९॥१८॥

आकाशयाननिपुणा जिनमंदिरेषु
मेर्वाद्यकृत्रिमधरासु जिनेशचैत्यान् ।
वंदंत उत्तमजनानुपदेशयोगा
नुद्धारयंति चरणौ तु नमामि तेषां ॥

ॐ ह्रीं आकाशगमनशक्तिचारणर्द्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ આકાશગમનમાં નિપુણ છે અને મેરુ આદિ પૃથ્વીમાં જે અકૃતિમ જિનમંદિરમાં જિનેન્દ્ર પ્રતિમાઓ છે તેની વંદના કરે છે અને ઉપદેશના માધ્યમથી ભવ્યજીવોનો ઉપકાર કરે છે તેમના ચરણોમાં અમે નમસ્કાર કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૧૮॥

भावार्थ:–जो आकाशगमन में निपुण हैं और जिनमंदिर में मेरु आदि अकृत्रिम पृथ्वी में जो जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं, उनकी वंदना करते हैं और उपदेश के माध्यम से भव्य जीवों का उपकार करते हैं, उनके चरणों में हम नमस्कार करते हैं। ॥०९॥१८॥

अणिमा

॥०९॥१९॥

ऋद्धिः सुविक्रियगता बहुलप्रकारा
तत्र द्विधाविभजनेष्वणिमादिसिद्धिः ।
मुख्यास्ति तत्परिचयप्रतिपात्तिमंत्रान्
यायज्मि तत्कृतविकारविवर्जितांश्चं ॥

ॐ ह्रीं अणिममहिमलघिमगरिमप्राप्तिप्राकाम्यवशित्वेशित्व ऋद्धि प्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :- વિક્રિયાઋદ્ધિ અનેક પ્રકારની છે તેમાં અણિમા આદિ શક્તિના ભેદથી બે પ્રકારની મુખ્ય છે. તે ઋદ્ધિઓના દુરુપયોગથી રહિત, તે ઋદ્ધિઓના પરિચય અને પ્રાપ્તિના મંત્રસ્વરૂપ મુનિઓની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૧૯॥

भावार्थ :- विक्रियाऋद्धि अनेक प्रकार की है उनमें अणिमा आदि की शक्ति के भेद से दो प्रकार की मुख्य है, उन ऋद्धियों के दुरुपयोग से रहित, उन ऋद्धियों के परिचय एवं प्राप्ति के मंत्र स्वरूप मुनियों की हम पूजा करते हैं। ॥०९॥१९॥

अंतर्धान

॥०९॥२०॥

अंतर्दधिप्रमुखकामविकीर्णशक्तिः
येषां स्वयं तपस उद्भवति प्रकृष्टा ।
तद्विक्रियाद्वितयभेदमुपागतानां
पादप्रधावनविधिर्मम पातु पाणिं ॥

ॐ ह्रीं विक्रियायामंतर्धानादिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમને અંતર્ધાન અને કામવિક્રિયા આદિ અનેક શક્તિઓ પ્રકૃષ્ટ તપના પ્રભાવથી સ્વયં ઉત્પન્ન થાય છે એવી વિક્રિયાને પ્રાપ્ત મુનિઓના ચરણોની પૂજાવિધિ મારા હાથને પવિત્ર કરે. ॥૦૯॥૨૦॥

भावार्थ :– जिनको अन्तर्धान और काम विक्रिया आदि अनेक शक्तियाँ प्रकृष्ट तप के प्रभाव से स्वयं उत्पन्न होती हैं ऐसे विक्रिया को प्राप्त मुनियों के चरणों की पूजाविधि मेरे हाथों को पवित्र करें। ॥०९॥२०॥

उग्रतप

॥०९॥२१॥

षष्टाष्टमद्विदशपक्षकमासमात्रा
नुष्ठेयभुक्तिपरिहारमुदीर्य योगं ।
आमृत्युमुग्रतपसा ह्यनिवर्तकास्ते
पांत्वर्चनाविधिमिमं परिलंभयंतु ॥

ॐ ह्रीं उग्रतपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– બેલા, તેલા, પક્ષ, માસ આદિ અનુષ્ઠાનયોગ્ય આહારનો ત્યાગ કરીને યોગને પ્રગટ કરવા મૃત્યુપર્યંત ઉગ્ર તપઋદ્ધિથી નહીં હટનારા ઋષિ પૂજાની વિધિને પ્રાપ્ત થાઓ અને મારી રક્ષા કરો. ॥૦૯॥૨૧॥

भावार्थ :– बेला, तेला, पक्ष, मास आदि अनुष्ठान योग्य आहार को त्याग कर योग को प्रकट कर मृत्युपर्यन्त उग्रतप ऋद्धि से नहीं हटने वाले ऋषि पूजा की विधि को प्राप्त हों एवं मेरी रक्षा करें। ॥०९॥२१॥

दीप्ततप

॥०९॥२२॥

घोरोपवासकरणेऽपि बलिष्ठयोगान्
दौर्गंध्यविच्युतमुखान् महदीप्तदेहान् ।
पद्मोत्पलादिसुरभिश्वसनान्मुनींद्रान्
यायज्मि दीप्ततपसो हरिचंदनेन ॥

ॐ ह्रीं दीप्ततपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ઘોર ઉપવાસ કરવા છતાં પણ મન-વચન-કાયા જેમના બળવાન છે, મુખ દુર્ગંધ રહિત છે, દેહ કાંતિથી દેદીપ્યમાન છે અને જેમનો શ્વાસોચ્છવાસ નિલકમળ સમાન સુગંધિત છે એવી દીપ્તતપધારક મુનિઓની અમે હરિચંદન આદિથી પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૨૨॥

भावार्थ :– घोर उपवास करने पर भी मन-वचन-काय जिनके बलशाली हैं, मुख दुर्गन्ध रहित है, देह कांति से दैदीप्यमान है एवं जिनका श्वासोच्छवास नील कमल के समान सुगन्धित है, ऐसे दीप्ततपधारक मुनियों की हम हरिचंदनादि से पूजा करते हैं। ॥०९॥२२॥

तप्ततप

॥०९॥२३॥

वैश्वानरौघपतितांबुकणेन तुल्य
माहारमाशु विलयं ननु याति येषां ।
विण्मूत्रभावपरिणाममुदेति नो वा
ते संतु तप्ततपसो मम सद्धिभूत्यै ॥

ॐ ह्रीं तप्ततपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમનો આહાર શીઘ્ર જ અગ્નિસમૂહમાં પડેલા જલકણ સમાન વિલયને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે અને વિષ્ટા, મૂત્ર, કફ આદિરૂપ પરિણમતા નથી, તે તપ્તતપઋદ્ધિના ધારી મુનિ મને મોક્ષની વિભૂતિ દેવામાં નિમિત્ત થાઓ. ॥૦૯॥૨૩॥

भावार्थ :– जिनका आहार शीघ्र ही अग्नि के समूह में पड़े जलकण के समान विलय को प्राप्त हो जाता है और विष्ठा, मूत्र, कक आदि रूप नहीं परिणमता वे तप्ततपऋद्धि के धारी मुनि मेरी मोक्ष की विभूति देने में निमित्त हों। ॥०९॥२३॥

महातप

॥०९॥२४॥

हारावलीप्रभृतिघोरतपोऽभियुक्ता:
कर्मप्रमाथनधियो यत उत्सहंते ।
ग्रामाटवीष्वशनमप्यतिपातयंति
ते संतु कार्मणतृणाग्निचया: प्रशांत्यै ।।

ॐ ह्रीं महातपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ મુક્તાવલી, સિંહનિષ્ક્રિડિત આદિ તપના ધારક છે, કર્મોના નાશ માટે ઉદ્યમી છે તથા ગામ, જંગલ આદિમાં પણ ભોજન ગ્રહણ કરતાં નથી, કર્મસમૂહરૂપ તૃણને બાળવા માટે અગ્નિસમૂહ સમાન છે એવા મુનિ આપણા પ્રશાંતભાવમાં નિમિત્ત થાઓ. ॥૦૯॥૨૪॥

भावार्थ :– जो मुक्तावली, सिंहनिष्क्रीड़ित आदि तप के धारक हैं, कर्मों के नाश के लिए उद्यमी हैं तथा ग्राम, जंगल आदि में भी भोजन ग्रहण नहीं करते, ऐसे कर्मसमूहरूप तृण को जलाने के लिए अग्निसमूह के समान मुनि हमारे प्रशांत भाव के लिए होवें। ॥०९॥२४॥

घोरतप

॥०९॥२५॥

कासज्वरादिविविधोग्ररुजादिसत्त्वे-
ष्वप्यच्युतानशनकायदमान् श्मशाने ।
भीमादिगह्वरदरीतटिनीषु दुष्ट-
संक्लृप्तबाधनसहानहमर्चयामि ।।

ॐ ह्रीं घोरतपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ ઉધરસ, તાવ આદિ ભયંકર રોગ થવા છતાં પણ ઉપવાસ અને શરીરના દમનને છોડતા નથી તથા સ્મશાનમાં, વિષમ પર્વતની ગુફા, કંદરા, નદીઓમાં દુષ્ટ પ્રાણીઓ દ્વારા કરવામાં આવતી બાધાઓને સહન કરે છે તે મુનિઓની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૨૫॥

भावार्थ :– जो खाँसी, ज्वर, आदि भयंकर रोगों के होने पर भी उपवास और शरीर के दमन को नहीं छोड़ते हैं तथा श्मशान में, विषम पर्वत की गुफा, कंदरा, नदियों में दुष्ट प्राणियों द्वारा की जाने वाली बाधाओं को सहते हैं, उन मुनियों की हम पूजा करते हैं। ॥०९॥२५॥

घोरपराक्रम

॥०९॥२६॥

दुःस्वप्नदुर्गतिसुदुर्मतिदौर्मनस्त्व-
मुख्याः क्रिया व्रतविघातकृते प्रशस्ताः ।
तासां तपोविलसनेन समूलकाषं
घातोऽस्ति ते सुरसमर्चितशीलपूज्याः ।।

ॐ ह्रीं घोरपराक्रमगुणऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના દુષ્ટ સ્વપ્ન, દુર્ગતિ, દુર્બુદ્ધિ અને મનના સંકલ્પનું દુષ્ટપણું આદિ વ્રતની પ્રશસ્ત ક્રિયામાં નાશનું કારણ છે, તપના પ્રભાવથી તેમનો નાશ કરનારા, દેવોથી પૂજ્ય, શીલવાન મુનિરાજની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૨૬॥

भावार्थ :– जिनके दुष्ट स्वप्न, दुर्गति, दुर्बुद्धि और मन के संकल्प का दुष्टपना आदि व्रत की प्रशस्त क्रियाओं के नाश में कारण हैं, तप के प्रभाव से उनको नाश करने वाले देवों से पूज्य शीलवान मुनिराजों की पूजा करता हूँ। ॥०९॥२६॥

घोरब्रम्हाचारित्व

॥०९॥२७॥

दुःस्वप्नदुर्गतिसुदुर्मतिदौर्मनस्त्व-
मुख्याः क्रिया व्रतविघातकृते प्रशस्ताः ।
तासां तपोविलसनेन समूलकाषं
घातोऽस्ति ते सुरसमर्चितशीलपूज्याः ।।

ॐ ह्रीं घोरपराक्रमगुणऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના દુષ્ટ સ્વપ્ન, દુર્ગતિ, દુર્બુદ્ધિ અને મનના સંકલ્પનું દુષ્ટપણું આદિ વ્રતની પ્રશસ્ત ક્રિયામાં નાશનું કારણ છે, તપના પ્રભાવથી તેમનો નાશ કરવાવાળા, દેવોથી પૂજ્ય, શીલવાન મુનિરાજની (હું) પૂજા કરુ છું. ॥૦૯॥૨૭॥

भावार्थ :– जिनके दुष्ट स्वप्न, दुर्गति, दुर्बुद्धि और मन के संकल्प का दुष्टपना आदि व्रत की प्रशस्त क्रियाओं के नाश में कारण हैं, तप के प्रभाव से उनको नाश करने वाले देवों से पूज्य शीलवान मुनिराजों की पूजा करता हूँ। ॥०९॥२७॥

मनबल

॥०९॥२८॥

अंतर्मुहूँर्तसमये सकलश्रुतार्थ-
संचितनेऽपि पुनरुद्धटसूत्रपाठाः ।
स्वच्छा मनोऽभिलषिंता रुचिरस्ति
येषां कुर्यान्मनोबलिन उत्तममांतरं मे ।।

ॐ ह्रीं मनोबलऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ અંતર્મુહૂર્ત માત્ર કાળમાં સકળ શ્રુતના ભાવાર્થનું ચિંતન કરવામાં સમર્થ છે, સ્પષ્ટ સૂત્રોનો પાઠ કરવામાં સમર્થ છે અને જેમના મનની રુચિ સ્વચ્છ છે તેવા મનોબલી ઋષિ મારા અંતરંગને ઉત્તમ કરો. ॥૦૯॥૨૮॥

भावार्थ :– जो अन्तर्मुहूँर्त मात्र काल में सकल श्रुत के भावार्थ के चिंतन में समर्थ हैं, स्पष्ट सूत्रों के पाठ करने में समर्थ हैं एवं जिनके मन की रुचि स्वच्छ है, वे मनोबली ऋषि मेरे अंतरंग को उत्तम करें। ॥०९॥२८॥

वचनबल

॥०९॥२९॥

जिह्वाश्रुतावरणवीर्यशमक्षयाप्ता
वंतर्मुहूँर्तसमयेषु कृतश्रुतार्था: ।
प्रश्नोत्तरोत्तरचयैरपि शुद्धकंठ-
देशा: सुवाक्यबलिनो मम पांतु यज्ञं ।।

ॐ ह्रीं वचनबलऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ જીહ્વા, ઇન્દ્રિય તથા શ્રુતાવરણ અને વીર્યાંતરાય કર્મનો ક્ષયોપશમ થવાથી અંતર્મુહૂર્તમાં શબ્દ, કંઠથી પ્રશ્નોત્તર સહિત સકલ શ્રુતનો ભાવાર્થ કરવામાં સમર્થ છે એવા વચનબલી મુનીન્દ્ર મારા યજ્ઞની રક્ષા કરો. ॥૦૯॥૨૯॥

भावार्थ :– जो जिह्वा इन्द्रिय तथा श्रुतावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने से अन्तर्मुहूँर्त में शब्द कंठ से प्रश्नोत्तर सहित सकलश्रुत का भावार्थ करने में समर्थ हैं वे वचनबली मुनीन्द्र मेरे यज्ञ की रक्षा करें। ॥०९॥२९॥

कायबल

॥०९॥३०॥

मेर्वादिपर्वतगणोद्धरणेषु शक्ता
रक्ष:पिशाचशतकोटिबलाधिवीर्या: ।
मासर्तुवत्सरयुगाशनमोचनेऽपि
हानिर्न कायबलिन: परिपूजयामि ॥

ॐ ह्रीं कायबलऋद्धिप्राप्तेभ्येऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેઓ સુમેરુ આદિ પર્વતોને ઉપાડવામાં સમર્થ છે, ભૂત, પિચાશ આદિથી પણ જેમનું લાખો-કરોડોગણું વધારે બળ છે, મહિનો, બે મહિના, વર્ષ, યુગપર્યંત ભોજનનો ત્યાગ કરવા છતાં પણ જેમના શરીરનું બળ ઘટતું નથી એવા કાયબલિ મુનીન્દ્રની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૩૦॥

भावार्थ :– जो सुमेरु आदि पर्वतों को उठाने में समर्थ हैं, राक्षस-पिशाच आदि से भी जिनका लाखों-करोड़ों गुना ज्यादा बल है, महिना, दो महिना, वर्ष, युग पर्यन्त भोजन का त्याग करने पर भी जिनके शरीर का बल नहीं घटता है, उन काय बली मुनीन्द्र की हम पूजा करते हैं। ॥०९॥३०॥

आमर्षोषधि

॥०९॥३१॥

स्पर्शात्करांह्रिजनिताद् गदशांतनं स्या-
दामर्षजा यव इति प्रतिपत्तिमाप्तान् ।
येषां च वायुरपि तत्स्पृशतां रुजार्ति-
नाशाय तन्मुनिवराग्रधरान् यजामि ।।

ॐ ह्रीं आमर्षोषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના હાથની આંગળીના સ્પર્શથી પણ રોગ શાંત થઈ જતા હોવાથી આમર્ષ ઔષધિ નામ પ્રાપ્ત થયું છે તથા જેમને સ્પર્શેલો વાયુ પણ રોગની પીડાને નાશ કરવામાં સમર્થ છે તે મુનિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૩૧॥

भावार्थ :– जिनके हाथ की अँगुली के स्पर्श से भी रोग शांत हो जाता है, इसलिए आमर्ष औषधि नाम प्राप्त हुआ है तथा जिनको स्पर्श करने वाली वायु भी रोग की पीड़ा का नाश करने में समर्थ है उन मुनियों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०९॥३१॥

क्ष्वेलौषधि

॥०९॥३२॥

निष्ठीवनं हि मुखपद्मभवं रुजानां
शांत्यर्थमुत्कटतपोविनियोगभाजां ।
क्ष्वेलौषधास्त इह संजनितावतारा:
कुर्वंतु विघ्ननिचयस्य हतिं जनानां ।।

ॐ ह्रीं क्ष्वेलौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના મુખકમળથી ઉત્પન્ન લાળ પણ રોગોની શાંતિ કરવામાં સમર્થ છે એવા ઉત્કટ તપના યોગને પ્રાપ્ત સાર્થક જન્મવાળા ક્ષ્વૈલૌષધિઋદ્ધિના ધારક ઋષિ આ યજ્ઞમાં મનુષ્યોના વિઘ્નસમૂહનું નિવારણ કરનારા થાઓ. ॥૦૯॥૩૨॥

भावार्थ :– जिनके मुखकमल से उत्पन्न हुआ निष्ठीवन (लार) भी रोगों की शांति करने में समर्थ है, ऐसे उत्कट तप के योग को प्राप्त सार्थक जन्म वाले क्ष्वेलौषधिऋद्धि के धारक ऋषि इस यज्ञ में मनुष्यों के विघ्नसमूह के निवारण करने वाले हों ॥०९॥३२॥

जल्लौषधि

॥०९॥३३॥

स्वेदावलंबितरजोनिचयो हि येषा
मुत्क्षिप्य वायुविसरेण यदंगमेति ।
तस्याशु नाशमुपयाति रुजां समूहो
जल्लौषधीशमुनयस्त इमे पुनंतु ।।

ॐ ह्रीं जल्लौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના સ્વેદ (પરસેવા)થી અવલંબિત રજનો સમૂહ પવનથી ઊડીને જે કોઈના શરીરનો સ્પર્શ કરે છે તેમના રોગનો સમૂહ નષ્ટ થઈ જાય છે એવા જલ્લૌષધિઋદ્ધિધારી મુનીન્દ્ર મને પવિત્ર કરે. ॥૦૯॥૩૩॥

भावार्थ :– जिनके स्वेद (पसीना) से अवलंबित रज का समूह वायु के बहाव से उड़कर जिसके शरीर का स्पर्श करता है उसके रोगों का समूह नष्ट हो जाता है, ऐसे जल्लौषधिकऋद्धि धारी मुनीन्द्र मुझे पवित्र करें। ॥०९॥३३॥

मल्लौषधि

॥०९॥३४॥

नासाक्षिकर्णरदनादिभवं मलं य-
न्नैरोग्यकारि वमनज्वरकासभाजां ।
तेषां मलौषधसुकीर्तिजुषां मुनीनां
पादार्चनेन भवरोगहतिर्नितांतं ।।

ॐ ह्रीं मलौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના નાસિકા, નેત્ર, કર્ણ, દાંત આદિનો મેલ રોગીના જ્વર એટલે તાવ, ઉધરસ, ઊલટી આદિને નિરોગ કરનારા છે એવા મલૌષધિ ઋદ્ધિની કીર્તિને પ્રાપ્ત મુનિરાજના ચરણકમળની પૂજા સંસારરૂપી રોગને નષ્ટ કરવામાં સમર્થ છે. ॥૦૯॥૩૪॥

भावार्थ :– जिनके नासिका, नेत्र, कर्ण, दाँत आदि का मल रोगी के ज्वर, खाँसी, उल्टी आदि को निरोग करने वाला है, उन मलौषधिऋद्धि की कीर्ति को प्राप्त मुनीराज के चरणकमल की पूजा संसाररूपी रोग को नष्ट करने में समर्थ हैं। ॥०९॥३४॥

विडोषधि

॥०९॥३५॥

उच्चार एव तदुपाहितवायुरेणू
अंगस्पृशौ च निहत: किल सर्वरोगान् ।
पादप्रधावनजलं मम मुर्घ्निपातं
किं दोषशोषणविधौ न समर्थमस्तु ।।

ॐ ह्रीं विडौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના દ્વારા છોડવામાં આવેલા મળથી સ્પર્શ થયેલ વાયુ અને ધૂળ જે કોઈના અંગોને સ્પર્શ કરે તેના બધા રોગોનો નાશ થાય છે તો શું તેમના ચરણકમળનું જળ મારા મસ્તક પર લગાવવાથી મારા દોષોના શોષણમાં સમર્થ નહીં થાય? ભાવાર્થાત્ અવશ્ય થશે. ॥૦૯॥૩૫॥

भावार्थ :– जिनके द्वारा छोड़े गये मल से स्पर्श की हुई वायु और धूलि, जिसके अंग का स्पर्श करे उसके सभी रोगों का नाश होता है तो क्या उनके चरणकमल का जल मेरे मस्तक पर लगाने पर मेरे दोषों के शोषण में समर्थ नहीं होगा ? भावार्थात् अवश्य होगा। ॥०९॥३५॥

सर्वौषधि

॥०९॥३६॥

प्रत्यंगदंतनखकेशमलादिरस्य
सर्वो हि तन्मिलितवायुरपि ज्वरादि ।
कासापतानवमिशूलभगंदराणां
नाशाय ते हि भविकेन नरेण पूज्या: ।।

ॐ ह्रीं सर्वोषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના પ્રત્યેક અંગ દાંત, નખ, કેશ, મળ આદિ તથા જેનાથી સ્પર્શિત વાયુ પણ જ્વર આદિ ઉધરસ, મિરગી, ઉલટી, (વમન), શૂળ, ભગંદર આદિ રોગોના નાશ માટે સમર્થ છે, તે મુનિ ભવ્યો દ્વારા પૂજવા યોગ્ય છે. ॥૦૯॥૩૬॥

भावार्थ :– जिनके प्रत्येक अंग दाँत, नख, केश, मल आदि तथा जिनसे स्पर्शित वायु भी ज्वर आदि तथा खाँसी, मिरगी, वमन, शूल, भगंदर, आदि रोगों के नाश के लिए समर्थ है, वे मुनि भव्यों के द्वारा पूजने योग्य हैं। ॥०९॥३६॥

आस्यविशौषधी

॥०९॥३७॥

येषां विषाक्तमशनं मुखपद्मयातं
स्यान्निर्विषं खलु तदंह्रिधरापि येन ।
स्पृष्टा सुधा भवति जन्मजरापमृत्यु-
ध्वंसो भवेत्किमु पदाश्रयणे न तेषाम् ।।

ॐ ह्रीं विडौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમને (આપવામાં આવેલું) વિષમિશ્રિત ભોજન મુખકમળને પ્રાપ્ત થતાં જ નિર્વિષ થઈ જાય છે અને જેમના પગતળને સ્પર્શિત ભૂમિ પણ અમૃતરૂપ થઈ જાય છે, તેમના ચરણોનો આશ્રય લેવાથી જન્મ-જરા ને અપમૃત્યુનો શું નાશ ન થઈ શકે? ભાવાર્થાત્ અવશ્ય થાય છે. ॥૦૯॥૩૭॥

भावार्थ :– जिनका विष मिश्रित भोजन मुखकमल को प्राप्त होते ही निर्विष हो जाता है तथा जिनके पदतल से स्पर्शितभूमि भी अमृतरूप हो जाती है । उनके चरणों का आश्रय लेने से जन्म, जरा, और अपमृत्यु का क्या नाश नहीं होता है ? भावार्थात् अवश्य होता है। ॥०९॥३७॥

द्रष्टिविशौषधी

॥०९॥३८॥

येषां सुदूरमपि दृष्टिसुधानिपातो
यस्योपरि स्खलति तस्य विषं सुतीव्रं ।
अप्याशु नाशमयते नयनाविषास्ते
कुर्वंत्वनुग्रहममी कृतुभागभाजः ।।

ॐ ह्रीं दृष्ट्यविषऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– દૂરથી પણ જેમની દૃષ્ટિરૂપ અમૃતની વર્ષા થઈ જાય તો તીવ્ર વિષ પણ શીઘ્ર જ નિર્વિષ થઈ જાય છે, યજ્ઞના ભાગને પ્રાપ્ત તે નેત્રાવિષઋદ્ધિધારી મુનિ મારા ઉપર કૃપાદૃષ્ટિ કરો. ॥૦૯॥૩૮॥

भावार्थ :– दूर से भी जिनकी दृष्टिरूपी अमृत की वर्षा हो जाय तो तीव्र विष भी शीघ्र ही निर्विष हो जाता है। यज्ञ के भाग को प्राप्त वे नेत्राविषऋद्धि धारी मुनि मेरे ऊपर कृपा दृष्टि करें। ॥०९॥३८॥

आशीविष

॥०९॥३९॥

ये यं ब्रुवंति यतयोऽकृपया म्रियस्व
सद्यो मृतिर्भवति तस्य च शक्तिभावात् ।
येषां कदापि न हि रोषजनिर्घटेत
व्यक्ता तथापि यजतास्यविषान् मुनींद्रान् ।।

ॐ ह्रीं आशीविषऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જે સાધુ ક્રોધથી કોઈને કહી દે કે 'તું મરી જા' તો તત્કાલ મરણને પ્રાપ્ત થાય, આ પ્રકારની શક્તિ હોવા છતાં જેઓ ક્રોધવશ ક્યારેય પણ અભિવ્યક્ત નથી કરતાં એવા આશીવિષઋદ્ધિધારી મુનિઓની પૂજા કરવી જોઈએ. ॥૦૯॥૩૯॥

भावार्थ :– जो साधु क्रोध से जिसके प्रति कह दे कि तू मर जा तो वह तत्काल मर जावे, इस प्रकार की शक्ति जिनके पास है, किन्तु क्रोधवश कभी भी अभिव्यक्त नहीं करते उन आशीविषऋद्धिधारी मुनियों की पूजा करना चाहिए। ॥०९॥३९॥

दृष्टिविष

॥०९॥४०॥

येषामशातनिचयः स्वयमेव नष्टोऽन्येषां
शिवोपचयनात्सुखमाददानाः ।
ते निग्रहात्तमनसो यदि संभवेयुर्दृष्ट्-
यैव हंतुमनिशं प्रभवो यजे तान् ।।

ॐ ह्रीं दृष्टिविषऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– પોતાની દ્રષ્ટિમાત્રથી જેઓ અન્યનું મરણ નિપજાવવામાં સમર્થ હોવા છતાં એવા પરિણામથી રહિત છે, જેમના અશાતાવેદનીય કર્મ સ્વયં નષ્ટ થઈ ગયા છે, જેઓ અન્યનું આત્મકલ્યાણ કરતાં થકા સ્વયં સુખને પ્રાપ્ત થયા છે એવા દૃષ્ટિવિષઋદ્ધિધારી ઋષિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૪૦॥

भावार्थ :– जिनका असाता वेदनीय कर्म स्वयमेव नष्ट हो गया है और दूसरों का कल्याण करने से जो स्वयं सुख को प्राप्त होते हैं, ऐसे वे मुनि यदि मारने का मन करे तो क्रूर दृष्टि से ही मारने में तुरंत समर्थ हैं । मैं उन ऋषियों की पूजा करता हूँ। ॥०९॥४०॥

क्षीरस्त्री

॥०९॥४१॥

क्षीराश्रवर्द्धिमुनिवर्यपदांबुजात
द्वंद्वाश्रयाद् विरसभोजनमप्युदश्चित् ।
हस्तार्पितं भवति दुग्धरसाक्तवर्ण
स्वादं तदर्चनगुणामृतपानपुष्टाः ।।

ॐ ह्रीं क्षीरश्राविऋध्दिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના યુગલ ચરણકમળના આશ્રયથી નિરસ ભોજન પણ હાથમાં આવતા દૂધરસથી સહિત વર્ણ અને સ્વાદવાળું થઈ જાય છે, આપણે તે મુનિરાજોના ગુણરૂપ પૂજનના અમૃતપાનથી પુષ્ટ થઈએ છીએ. ॥૦૯॥૪૧॥

भावार्थ :– जिनके युगल चरणकमल के आश्रय से नीरस भोजन भी हाथ में आने पर दूध रस से सहित वर्ण और स्वाद वाला हो जाता है, हम उन मुनिराज के गुणरूप पूजन अमृतपान से पुष्ट होते हैं। ॥०९॥४१॥

मधुस्त्रवी

॥०९॥४२॥

येषां वचांसि बहुलार्तिजुषां नराणां
दुःखप्रघातनतयापि च पाणिसंस्था ।
भुक्तिर्मधुस्वदनवत् परिणामवीर्या-
स्तानर्चयामि मधुसंश्रविणो मुनींद्रान् ।।

ॐ ह्रीं मधुश्राविऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના વચન અત્યાધિક પીડિત મનુષ્યની પીડાને દૂર કરવામાં સમર્થ છે અને હાથમાં આવેલું ભોજન મધુર સ્વાદયુક્ત થઈ જાય છે એવા પરાક્રમને ધારણ કરનારા તેમધુસ્રાવી મુનિઓની આપણે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૪૨॥

भावार्थ:–जिनके वचन अत्यधिक पीड़ित मनुष्य की पीड़ा को दूर करने में समर्थ हैं एवं हाथ में आया भोजन मधुर स्वादयुक्त हो जाता है, ऐसे पराक्रम को धारण करने वाले उन मधुस्रावी मुनियों की हम पूजा करते हैं। ॥०९॥४२॥

घृतस्त्रवी /सर्पितस्त्रवी

॥०९॥४३॥

रुक्षान्नमर्पितमथो करयोस्तु येषां
सर्पिः:स्ववीर्यरसपाकवदाविभाति ।
ते सर्पिराश्रविण उत्तमशक्तिभाजः
पापाश्रवप्रमथनं रचयंतु पुंसाम् ।।

ॐ ह्रीं घृतश्राविऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના હાથમાં રાખેલું રુક્ષ ભોજન ઘૃતસમાન થઈને વીર્યશક્તિને પ્રગટ કરનારું થઈ જાય છે એવા સર્પિસ્રાવી ઉત્તમ શક્તિને પ્રાપ્ત મુનિવર જીવોના પાપાસ્ત્રવનો નિરોધ કરો. ॥૦૯॥૪૩॥

भावार्थ:–जिनके हाथ में रखा हुआ रूक्ष भोजन घृत के समान होकर वीर्यशक्ति को प्रगट करने वाला होता है, ऐसे सर्पिस्रावी उत्तम शक्ति को प्राप्त मुनिवर पुरुषों के पापास्त्रव का निरोध करें। ॥०९॥४३॥

अमृतस्रवी

॥०९॥४४॥

पीयूषमाश्रवति यत्करयोर्धृतं सद्
रूक्षं तथा कटुकमम्लतरं कुभोज्यं ।
येषां वचोऽप्यमृतवत् श्रवसोर्निधत्तं
संतर्पयत्यसुभृतामपि तान् यजामि ।।

ॐ ह्रीं अमृतश्राविऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના હાથમાં રાખેલું રુક્ષ અન્ન તથા કડવું, ખાટું, કુભોજનનું પણ અમૃતરૂપ પરિણમન થઈ જાય છે, જેમના વચન કાનમાં પડતા પ્રાણીઓને અમૃત સમાન સંતુષ્ટ કરે છે એવા મુનિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૪૪॥

भावार्थ :– जिनके हाथ में रखा हुआ रूक्ष अन्न तथा कटुक, खट्टा कुभोजन भी अमृतरूप परिणमन कर जाता है, जिनके वचन कानों में पड़ने पर प्राणियों को अमृत के समान संतुष्ट करते हैं, उन मुनियों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०९॥४४॥

अक्षीण महानस

॥०९॥४५॥

यद्दत्तशेषमशनं यदि चक्रवर्ति-
सेनाऽपि भोजयति सा खलु तृप्तिमेति ।
तेऽक्षीणशक्तिललिता मुनयो दृगाध्व-
जाता ममाशु वसुकर्महरा भवंतु ।।

ॐ ह्रीं अक्षीणमहानसऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમની આહાર વિધિમાં બચેલું ભોજન કદાચિત્ ચક્રવર્તીનું સૈન્ય પણ જો ગ્રહણ કરે તો અખૂટ રહે એવી અક્ષીણમહાનસઋદ્ધિના ધારક મુનીન્દ્ર મારા આઠ કર્મોને હરનારા થાઓ. ॥૦૯॥૪૫॥

भावार्थ :– जिनके लिए दिया हुआ भोजन कदाचित् चक्रवर्ती की सेना भी करे तो वह भी तृप्त हो जाती है, वे अक्षीण महानसऋद्धिधारी मुनीन्द्र मेरे नेत्र कमल के मार्ग को प्राप्त होते हुए आठ कर्मों को हरने वाले हों। ॥०९॥४५॥

अक्षीण महालय

॥०९॥४६॥

यस्योपदेशसदसि प्रसरच्युतेऽपि
तिर्यग्मनुष्यविबुधाः शतकोटिसंख्याः ।
आगत्य तत्र निवसेयुरबाधमाना-
स्तिष्ठंति तान् मुनिवरानहमर्चयामि ।।

ॐ ह्रीं अक्षीणमहालयऋध्दिधारकेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમના ઉપદેશનું સભાસ્થળ નાનું હોવા છતાં પણ તેમાં સેંકડો–કરોડો મનુષ્ય, તિર્યંચ, દેવ આવીને સુખપૂર્વક બેસે છે એવા અક્ષીણમહાલયઋદ્ધિધારી મુનિઓની આપણે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૪૬॥

भावार्थ :– जिनकी उपदेश सभा छोटी होने पर भी उसमें सैकड़ों-करोड़ों मनुष्य, तिर्यंच, देव आकर सुखपूर्वक बैठते हैं, उन मुनियों की हम पूजा करते हैं। ॥०९॥४६॥

सकल ऋद्धि

॥०९॥४७॥

इत्थं सत्तपस: प्रभावजनिता: सिद्ध्यृद्धिसंपत्तयो
येषां ज्ञानसुधाप्रलीढहृदया: संसारहेतुच्युता:।
रोहिण्यादिविधाविदोदितचमत्कारेषु संनि:स्पृहा
नो वांछंति कदापि तत्कृतविधिं तानाश्रये सन्मुनीन्।।

ॐ ह्रीं सकलऋद्धिसंपन्नसर्वमुनिभ्य: पूर्णार्घम् ।

ભાવાર્થ :– જેમની પાસે સમીચીન તપના પ્રભાવથી થનારા સિદ્ધિ-ઋદ્ધિરૂપ સંપત્તિ છે, તે જ્ઞાનામૃતથી પુષ્ટ હૃદયવાળા મુનિરાજ સાંસારિક પ્રયોજનથી રહિત હોય છે, રોહિણી આદિ મહાવિદ્યાના પ્રભાવથી થવાવાળા ચમત્કારોથી નિસ્પૃહ હોય છે અને ક્યારેય તેમનો આશ્રય તથા ઉપયોગ ઈચ્છતા નથી એવા સકળઋદ્ધિસમ્પન્ન મુનિઓનો આપણે આશ્રય લઈએ છીએ. ॥૦૯॥૪૭॥

भावार्थ :– जिनके पास समीचीन तप के प्रभाव से सिद्धिऋद्धिरूप सम्पत्ति है वे ज्ञानामृत से पुष्ट हृदय वाले मुनिराज सांसारिक प्रयोजन से रहित होते हैं । वे रोहिणी आदि महाविद्याओं के प्रभाव से होने वाले चमत्कारों से निष्पृह होते हैं एवं कदापि उनका आश्रय तथा उपयोग नहीं चाहते उन मुनियों का हम आश्रय लेते हैं। ॥०९॥४७॥

गणधरों को अर्घ्य

॥०९॥४८॥

चतुर्विंशतितीर्थेशां चतुर्दशशतं मतं ।
सत्रिपंचाशता युक्तं गणिनां प्रयजाम्यहं ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थेश्वराग्रिमसमावर्तिसत्रि
-पंचाशच्चतुर्दशशतगणधरमुनिभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ચોવીસ તીર્થંકરોના ૧૪૫૩ ગણધરોની અમે પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૯॥૪૮॥

भावार्थ :– चौबीस तीर्थंकरों के चौदह सौ त्रेपन गणधरों की हम पूजा करते हैं। ॥०९॥४८॥

सामूहिक अर्घ

॥०९॥४९॥

मदवेदनिधिद् व्ययग्रखत्रयांकान् मुनीश्वरान् ।
सप्तसंघेश्वरांस्तीर्थ-कृत्सभानियतान्यजे ।।

ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरसभासंस्थायि एकोनत्रिंशल्लक्षाष्टचत्वारिंशत्सहस्रप्रमित-मुनीन्द्रेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ:–તીર્થંકરદેવની સભામાં નિયત ૨૯ લાખ ૪૮ હજાર અને ૭ સંઘના ઈશ્વર ભાવાર્થાત્ ચારણઋદ્ધિધારી સપ્તઋષિઓની હું પૂજા કરું છું. ॥૦૯॥૪૯॥

भावार्थ:–तीर्थंकर देव की सभा में नियत उनतीस लाख अड़तालीस हजार एवं सात संघ के ईश्वर भावार्थात् चारणऋद्धिधारी सप्तऋषियों की मैं पूजा करता हूँ। ॥०९॥४९॥

(मद ८ वेद प्रथमानुयोग आदि की अपेक्षा चार, निधि नौ एवं दो, शून्य तीन, इनको "अंकानां वामनोगति" के नियमानुसार रखने पर २९,४८,००० शून्य तीन बाद में रखा तथा सात संघ के ईश्वर से चारण ऋद्धिधारी मुनि ले सकते हैं। ॥०९॥४९॥

जिनप्रतिमा

॥०१॥

अकृत्रिमा: श्रीजिनमूर्तयो नव सपंचविंशा: खलु कोटयस्तथा।
लक्षास्त्रिपंचाशमितास्त्रिसगुणा: कृष्णा: सहस्राणि शतं नवानां ॥

ॐ ह्रीं नवशतपंचविंशतिकोटित्रिपंचाशल्लक्षसप्तविंशाति-सहस्रनवशताष्टचत्वारिंशत्-प्रमित अकृत्रिम-जिनबिंबेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ૯૨૫,૫૩,૨૭,૯૪૮ અકૃત્રિમ શ્રી જિનમૂર્તિઓની આપણે નમસ્કાર કરીને પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૧॥

भावार्थ :– नौ सौ पच्चीस करोड़ त्रेपन लाख सत्ताईस हजार नौ सौ अड़तालीस अकृत्रिम श्री जिनमूर्तियों को हम नमस्कार करके पूजा करते हैं। ॥०१॥

॥०२॥

अष्टौ कोट्यस्तथा लक्षा: षट्पंचाशमितास्तथा ।
सहस्त्रं सप्तनवतेरेकाशीतिश्चतु:शतं ।।
एतत्संख्यान् जिनेंद्राणामकृत्रिमजिनालयान् ।
अत्राहूय समाराध्य पूजयाम्यहमध्वरे ।।

ॐ ह्रीं अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतु:शत एकाशीतिसंख्याकृत्रिमजिनालयेभ्योऽर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ૮,૫૬,૯૭,૪૮૧ અકૃત્રિમ જિનાલયોની આ યજ્ઞમાં આહ્વાનન અને આરાધના કરીને પૂજા કરું છું. ॥૦૨॥

भावार्थ :– आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिनालयों की इस यज्ञ में आह्वानन एवं आराधना करके पूजा करता हूँ। ॥०२॥

॥०३॥

यो मिथ्यात्वमतंगजेषु तरुणक्षुन्नुन्नसिंहायते
एकांतातपतापितेषु समरुत्पीयूषमेघायते ।
श्वभ्रांधप्रहिसंपतत्सु सदयं हस्तावलंबायते
स्याद्वादध्वजमागमं तमभित: संपूजयामो वयं।।

ॐ ह्रीं स्याद्वादमुद्रांकितपरमजिनागमायार्घम्।

ભાવાર્થ :– જેઓ મિથ્યાત્વરૂપી હાથી માટે તરુણ ભૂખથી પીડિત દુષ્ટ સિંહ સમાન છે, એકાંતરૂપી આતાપથી તપ્તાયમાન મનુષ્ય માટે પવનયુક્ત અમૃતના મેઘ સમાન છે અને નરકરૂપી કૂવામાં ડૂબતા મનુષ્ય માટે દયાળુ મનુષ્યની જેમ હાથનું અવલંબન દેવાવાળા છે, એવા સ્યાદ્વાદરૂપ ધ્વજયુક્ત આગમની અમે સર્વત્ર પૂજા કરીએ છીએ. ॥૦૩॥

भावार्थ:–जो मिथ्यात्व रूपी हाथी के लिए तरुण भूख से पीड़ित दुष्ट सिंह के समान है, एकान्तरूपी आताप से तप्तायमान मनुष्य के लिए पवन युक्त अमृत के मेघ के समान हैं एवं नरकरूपी कुएँ में डूबते मनुष्य के लिए दयालु मनुष्य की तरह हाथ का अवलम्बन देने वाला है, ऐसे स्याद्वादरूप ध्वजयुक्त आगम की हम सर्वत्र पूजा करते हैं। ॥०३॥

जिनधर्म

॥०४॥

जिनेंद्रोक्तं धर्मं सुदशयुतभेदं त्रिविधया
स्थितं सम्यक्-रत्नत्रयलतिकयाऽपि द्विविधया ।
प्रगीतं सागारेतरचरणतो ह्येकमनघं
दयारूपं वंदे मखभुवि समास्थापितमिमं ।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिभेदेन दशलक्षणाय सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रभेदेन त्रिलक्षणाय मुनिगृहस्थाचारभेदेन् द्विविधाय दयारुपत्वेनैकरुपाय् च जिनधर्माय अर्घम् ।

ભાવાર્થ :– ઉત્તમ ક્ષમાદિરૂપ દશ ભેદ સંયુક્ત અને સમ્યગ્દર્શન, જ્ઞાન, ચારિત્રના ભેદથી ત્રણ પ્રકારના મુનિ, શ્રાવકના ભેદથી બે પ્રકારના અને નિષ્પાપ દયાના ભેદથી એક પ્રકારના જિનધર્મની યજ્ઞભૂમિમાં સ્થાપના કરીને હું પૂજા કરું છું. ॥૦૪॥

भावार्थ :– उत्तम क्षमादिरूप दश भेद संयुक्त और सम्यम्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद से तीन प्रकार के, मुनि, श्रावक के भेद से दो प्रकार के एवं निष्पाप दया के भेद से एक प्रकार के जिनधर्म की मैं यज्ञभूमि में स्थापित करके पूजा करता हूँ। ॥०४॥

सामूहिक अर्घ

॥०५॥

यागमंडलसमुद्धृता जिनाः, सिद्धवीतमदनाः श्रुतानि च ।
चैत्यचैत्यगृहधर्ममागमं संयजामि सुविशुद्धिपूर्तये ॥

ॐ ह्रीं सर्वयागमण्डलदेवताभ्यः पूर्णार्घम् ।

ભાવાર્થ :– આ યાગમંડળમાં બિરાજિત જિનેન્દ્રદેવ, સિદ્ધ પરમેષ્ઠી, વીતરાગ ગુરુ, શાસ્ત્ર, ચૈત્ય, ચૈત્યાલય, જિનધર્મ, જિનાગમની હું પરિપૂર્ણ વિશુદ્ધિ માટે પૂજા કરું છું. ॥૦૫॥

भावार्थ :– इस यागमंडल में विराजित जिनेन्द्रदेव, सिद्धपरमेष्ठी, वीतराग गुरु, शास्त्र, चैत्य, चैत्यालय, जिनधर्म, जिनागम की मैं परिपूर्ण विशुद्धि के लिए पूजा करता हूँ। ॥०५॥

सामूहिक अर्घ

॥०६॥

शांति: पुष्टिरनाकुलत्वमुदितभ्राजिष्णुताविष्कृति :
संसारार्णवदु:खदावशमनं नि:श्रेयसोद्भूतिता ।
सौराज्यं मुनिवर्यपादवरिवस्याप्रक्रमो नित्यशो
भूयादभ्रशराक्षिनायकमहापूजाप्रभावान्मम ।।

इत्याशीर्वादं पठित्वा पुष्पांजलिं क्षिपेत्

ભાવાર્થ :– આ બસો પચાસ મહાનાયકોની પૂજાના પ્રભાવથી ભવ્ય જીવોને શાંતિ થાઓ, પુષ્ટિ થાઓ, અનુકૂળતા થાઓ, તેજસ્વિતાની પ્રાપ્તિ થાઓ, સંસારસમુદ્રના દુ:ખરૂપ દાવાનળનું શમન થાઓ, કલ્યાણની ઉત્પત્તિ થાઓ, સુંદર રાજ્ય થાઓ. તથા મુનિવરના ચરણોની પૂજાનો અનુગ્રહ સદા કાળ પ્રાપ્ત થાઓ. ॥૦૬॥

भावार्थ :– इन दो सौ पचास महानायकों की पूजा के प्रभाव से भव्य जीवों को शांति हो, पुष्टि हो, अनाकुलता हो, तेजस्विता की प्राप्ति हो, संसार समुद्र के दु:खरूप दावानल का शमन हो, कल्याण की उत्पत्ति हो, सुन्दर राज्य हो तथा मुनिवर के चरणों की पूजा का अनुक्रम सदा काल प्राप्त हो । ॥०६॥

इस प्रकार सर्ववलय कोणों में पुष्पांजलि रूप आशीर्वाद देना चाहिए ।

ततोऽत्राचार्यार्हद्भक्तिसिद्धश्रुतचारित्रभक्तिपाठं कृत्वा महार्घ दद्यात् ।

આ રીતે સર્વવલય ખૂણાઓમાં પુષ્પાંજલિરૂપ આશીર્વાદ દેવા જોઈએ.

अब यहाँ यजमान और आचार्य दोनों आचार्यभक्ति, अर्हद्भक्ति, सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति पाठ करें एवं अर्घ चढ़ावें ।

હવે અહીં યજમાન અને આચાર્ય બંને આચાર્યભક્તિ, અર્હદભક્તિ, સિદ્ધભક્તિ, શ્રુતભક્તિ, ચારિત્રભક્તિ પાઠ કરે અને અર્ઘ્ય ચઢાવે.

अध्यात्मतीर्थ श्री सुवर्णपुरी सोनगढ़

यह स्वर्णपुरी अति पावन है, मंगल मंगल मंगल कर है

/ @KANJISWAMISONGADH / Google play App Store